नमस्कार महामंत्र

णमो अरिहंताणं

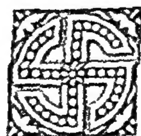
णमो सिद्धाणं

णमो आयरियाणं

णमो उवज्झायाणं

णमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच णमोक्कारो, सव्व-पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥



// श्री महावीराय नमः //

// जय नानेश //

// जय रामेश //

जैन संस्कार पाठ्यक्रम
भाग - 5

संकलनकर्ता
मदनलाल कटारिया

प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
बीकानेर

संस्करण - षष्टम् संस्करण, वर्ष 2008

प्रतियाँ - 3,100

मूल्य - रुपये 5/-

अर्थ सौजन्य : शासननिष्ठ दानवीर श्रेष्ठिवर्य श्री विमलचन्दजी सोहनलालजी सिपाणी परिवार बैंगलोर

पुस्तक एवं परीक्षा फार्म प्राप्ति स्थल

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ,

समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर (राज.) फोन-0151-2544867, 3292177

श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार

समता भवन, नौलाईपुरा, रतलाम-457001 (म.प्र.) फोन-07412-244443

Sampat Nursing Home

4, Nachiappa Street, Mylapore, CHENNAI-600004 ☎ : 4980572, 498002, 4980578

श्री सोहनलालजी विमलचंदजी सिपाणी

831, 13th मेन II ब्लॉक, कोरमंगला, बैंगलोर

☎ 25537878 (नि.), 25537833 (ऑ.)

श्री जवाहर मित्र मण्डल

उन बजार, ब्यावर जिला अजमेर (राज.)

श्री सायरचन्दजी छल्लाणी

पारसमनी, 4 वेस्ट प्रतापनगर, मेन पटेल नगर, न्यू देहली

☎ 0124 - 5052629, 011 - 25883344

श्री पृथ्वीराज जी पारख

पारख ट्रेडर्स, आपापुरी, कचहरी रोड पो. दुर्ग - 491001

फोन : (0788) 2324255 (नि.) 2324554 (ऑ)

प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर - 334005 (राज.)

फोन : (0151) 2544867, 3292177

मुद्रक

छाजेड़ प्रिन्टरी प्रा. लि., 108, स्टेशन रोड, रतलाम (म. प्र.)

फोन : (07412) 230557

भूमिका....

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा अनेक धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियाँ चलाई जा रही हैं, जिनमें 'धार्मिक परीक्षा बोर्ड' भी एक है, जिसके माध्यम से ज्ञानार्जन करने वालों के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित कर परीक्षाएँ ली जाती रही हैं। विभिन्न प्रसंगों पर परमागम रहस्यज्ञाता, व्यसनमुक्ति प्रणेता 1008 श्रद्धेय गुरुवर आचार्य श्री रामलालजी म.सा. से तत्व चर्चा का अवसर प्राप्त होता रहा है। तत्व चर्चा के दौरान बदलते परिवेश के अनुरूप नये पाठ्यक्रम की आवश्यकता अनुभूत हुई।

अतएव जैन संस्कार पाठ्यक्रम के नाम से नवीन पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया है। जिसमें भाग 1 से 12 तक प्रस्तुत किए गए हैं, जिससे जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त होगा तथा विशेष ज्ञानार्जन कर जीवन में कुछ पा सकेंगे ऐसा विश्वास है। पाठ्यक्रम को सुरुचिपूर्ण एवं सुबोध बनाने के लिए साहित्य की विविध विधाओं से सम्पन्न बनाया गया है।

पाठ्यक्रम के संकलन में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जिनका मार्गदर्शन एवं सहयोग मिला, उनका हृदय से आभार व्यक्त करते है।

सभी श्री संघों एवं चातुर्मासिक क्षेत्रों के धर्मानुरागी भाई-बहिनों से अनुरोध है कि अधिक से अधिक इन परीक्षाओं में भाग लेकर ज्ञान की श्रीवृद्धि में योगदान प्रदान करें। इसी शुभेच्छा के साथ।

विनीत

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

बीकानेर

परीक्षा के नियम

परीक्षा में भाग लेने वाले विद्यार्थियों को फार्म भरना आवश्यक है कम से कम दस परीक्षार्थी होने पर परीक्षा केन्द्र खोला जा सकेगा।

1. पाठ्यक्रम - भाग 1 से 12 तक

2 योग्यता - ज्ञानार्जन का अभिलाषी

3. परीक्षा का समय - माह आसोज, विदी पक्ष

4. श्रेणी निर्धारण

विशेष योग्यता - 75% से 100%

प्रथम श्रेणी - 60% से 74%

द्वितीय श्रेणी - 46% से 59%

तृतीय श्रेणी - 35% से 45%

5. परीक्षा फल - परीक्षा फल का प्रकाशन पत्रिका श्रमणोपासक में तथा परीक्षा केन्द्रों पर उपलब्ध रहेगा।

6. प्रमाण-पत्र - सम्बंन्धित परीक्षा केन्द्रों पर प्रमाण-पत्र भिजवायें जाएंगे।

7. पारितोषिक - प्रत्येक परीक्षा में प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा प्रोत्साहन पुरस्कार।

अनुक्रम

अस्वाध्याय

निम्नलिखित बत्तीस अस्वाध्याय के कारणों को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए।

क्र.	नाम	आकाश संबंधी १० अस्वाध्याय	कालमर्यादा
१.	उल्कापात	'टूटता हुआ तारा, पीछे रेखा युक्त प्रकाश'	एक प्रहर
२.	दिग्दाह	दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा में आग सी लगी है	जब तक रहे
३.	गर्जित	अकाल में मेघगर्जना हो तो	दो प्रहर
४.	विद्युत	अकाल में बिजली चमके तो	एक प्रहर
५.	निर्घात	बिजली कड़के तो	आठ प्रहर
६.	यूपक	शुक्ल पक्ष की १-२-३ की रात	प्रहर रात्रि तक
७.	यक्षादीप्त	आकाश में यक्ष का चिह्न	जब तक दिखाई दे
८-९.	धूमिका-मिहिका-काली और सफेद धूंअर		जब तक रहे
१०.	रज उद्घात	आकाश मंडल धूली से आच्छादित	जब तक रहे

नक्षत्र २८ होते हैं, उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक ९. नक्षत्र वर्षा के गिने गए हैं। इनमें होने वाली मेघ गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय काल नहीं गिना गया है। **(स्थानाङ्ग सूत्र १०, उ.१)**

औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय

क्र.	नाम	विवरण	कालमर्यादा
११-१३	हड्डी, रक्त मांस	ये तिर्यंच के ६० हाथ के भीतर हो तो	३ प्रहर
		मनुष्य के १०० हाथ के भीतर हो तो	एक दिन रात
		मनुष्य की हड्डी १०० हाथ के भीतर यदि जली या धुली न हो तो	१२ वर्ष तक

(आवश्यक निर्युक्ति पृ.२१७)

क्र.	नाम	विवरण	कालमर्यादा
१४.	अशुचि	दुर्गंध आवे या दिखाई दे	तब तक
१५.	श्मशान भूमि	१०० हाथ के भीतर हो तो	स्वाध्याय नहीं करें
१६.	चंद्र ग्रहण	खंड ग्रहण, पूर्ण ग्रहण हो तो क्रमशः	८ प्रहर, १२ प्र.
१७.	सूर्य ग्रहण	खंड ग्रहण, पूर्ण ग्रहण हो तो क्रमशः	१२ प्रहर, १६ प्र.
१८.	पतन	राजा का राज्याधिकारी के निधन होने पर (नवीन राजा घोषित न हो)	तब तक

१९.	राजविग्रह	युद्ध स्थान के निकट	जब तक युद्ध चले
२०.	शव	पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो	जब तक रहे
२१.	चार महापुर्णिमा	१. आषाढ़ी पूर्णिमा २. अश्विनी पूर्णिमा	दिन-रात
		३. कार्तिकी पूर्णिमा ४. चैत्र की पूर्णिमा	दिन - रात
२५-२८.	चार प्रतिपदा	इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा	दिन-रात
२९-३२.	चार संधि समय	प्रातः, सायं, मध्याह्न और मध्य रात्रि २४ मिनिट पहले से २४ मिनिट बाद तक	१-१ मुहुर्त

(स्थानाङ्ग सूत्र ४)

विशेष नोट -

१. कुछ पुस्तकों में उक्त ३२ के अतिरिक्त भाद्र मास की पूर्णिमा एवं प्रतिपदा ये दो दिन और मिलाकर ३४ अस्वाध्याय माने गए हैं। परन्तु ये दोनों अस्वाध्याय परंपरा से माने गए हैं, इनका मौलिक प्रमाण कुछ भी नहीं है।

२. बालक-बालिका के जन्म का क्रमशः सात और आठ दिन का १०० हाथ के भीतर अस्वाध्याय माना जाता है।

३. गायादि के जर गिरती रहे तब तक, उसके गिरने के बाद तीन प्रहर तक।

४. **कालिक सूत्र-** ११ अंग, ४ छेद तथा मूलसूत्र में एक उत्तराध्ययन सूत्र। उपांग सूत्र में जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, चंद्रप्रज्ञप्ति, निरयावलिया पंचक (कप्पिया, कप्पवडंसिया, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वण्हिदसा) शेष सभी उत्कालिक सूत्र हैं। किन्तु ३२ वां आवश्यक सूत्र नोकालिक नोउत्कालिक सूत्र है।

   कालिक सूत्र की स्वाध्याय दिन एवं रात्रि के प्रथम एवं अन्तिम प्रहर में एवं उत्कालिक सूत्र की स्वाध्याय किसी भी समय अस्वाध्याय के कारणों को टालकर करना चाहिए।

५. स्वाध्याय का वाचन करने के पश्चात 'आगमे तिविहे' का पाठ बोलें।

६. एक प्रहर लगभग ३ घंटे का होता है।

७. आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र का काल तारीख के हिसाब से २१ जून से २५ अक्टू. के लगभग होता है।

* *

सूत्र - विभाग

1.दशवैकालिक एक परिचय

३२ आगमों के वर्गीकरण के समय दशवैकालिक को चार मूल सूत्रों में सम्मिलित किया गया। क्योंकि इसमें ज्ञान,दर्शन, चारित्र, तप इन चार (आत्मा के) मूल गुणों का पोषण होता है तथा श्रामण्यता की नींव मजबूत होने के कारण इसे मूल सूत्र कहा गया है। यह आगम ''अंगबाह्य'' (अनंगप्रविष्ट श्रुत) एवं उत्कालिक सूत्र है। इसका वाचन अस्वाध्याय समय को टालकर (छोड़कर) सभी प्रहरों में किया जा सकता है।

अपरान्ह में आरम्भ किए इस आगम के दस अध्ययन निबद्ध (संकलन) करते-करते विकाल (संध्या समय) हो जाने से इसका नाम ''दशवैकालिक'' रखा गया।

इस सूत्र के रचयिता भ. महावीर के शासनवर्ती चतुर्थ पट्टधर श्रुत केवली आचार्य शय्यंभव थे। आचार्य प्रभव ने ब्राह्मण पुत्र शय्यंभव को अपने ज्ञान से जिनशासन की प्रभावना करने वाला जाना एवं उसे प्रेरित करने हेतु अपने दो शिष्यों को उस यज्ञशाला में भेजा, जहाँ शय्यंभव थे। शय्यंभव ने श्रमणों का घोर अपमान किया। श्रमणों ने कहा - 'अहो कष्टं, अहो कष्टं तत्वं विज्ञायते नहि' अहो ! खेद की बात है तत्व नहीं जाना जा रहा है। शय्यंभव ने सोचा अरे ये श्रमण क्या बोल रहे हैं ? इनकी बात असत्य नहीं हो सकती वे हाथ में तलवार लेकर अपने अध्यापक के पास पहुँचे और कहा बताओ तत्व का स्वरूप क्या है ? नहीं बताओगे तो तुम्हारा सिर धड़ से अलग कर दूँगा। तलवार देखकर अध्यापक काँप उठे और कहा अरिहंत प्ररूपित धर्म ही यथार्थ धर्म और तत्व है।

वे आचार्य प्रभव के पास पहुँचे और उनकी वाणी से बोधित होकर दीक्षित हो गये। आचार्य के पास उन्होंने १४ पूर्वों का ज्ञान प्राप्त किया और श्रुतधर परम्पराओं के द्वितीय श्रुतधर हुए।

जब शय्यंभव दीक्षित हुए तब उनकी पत्नी गर्भवती थी, समय के साथ पुत्र का जन्म हुआ और उसका नाम ''मनक'' रखा गया।

जब बालक मनक आठ वर्ष का हुआ तब उसने माँ से अपने पिता के बारे में पूछा माँ ने सारी घटना सुना दी, तेरे पिता जैन मुनि बन गए हैं वे अब जैन संघ के आचार्य हैं, अभी इसी चम्पापुरी नगरी में विचरण कर रहे हैं। माता की अनुमति लेकर 'बालक मनक' पिता (आचांर्य श्री) के दर्शनार्थ रवाना हुआ।

रास्ते में मनक को आचार्य के दर्शन हुए। आचार्य के पूछने पर मनक ने अपना परिचय एवं आने का कारण बताया और आचार्य से पूछा - क्या आप आचार्य शय्यंभव को जानते हैं ? तब आचार्य ने कहा मैं शय्यंभव का अभिन्न (एक शरीर भूत) मित्र हूँ। मोह न बढ़ जाए इस अपेक्षा से अपना स्पष्ट परिचय नहीं दिया बल्कि इस रूप में अपना परिचय देकर उसे शिष्य रूप में स्वीकार किया। आचार्य ने अपने विशिष्ट ज्ञान से देखा कि यह बालक अल्पायु है। इसके लिए सभी शास्त्रों का अध्ययन करना संभव नहीं है। तब मुनि मनक के लिए द्वादशांग गणिपिटक से दशवैकालिक सूत्र की रचना की।

मुनि मनक छः मास में दशवैकालिक सूत्र को पढ़कर श्रुत और चारित्र की सम्यक् आराधना कर संसार से समाधिपूर्वक आयु पूर्ण कर स्वर्गस्थ हुए। बाद में निर्णय लिया गया कि इस आगम को ज्यों का त्यों ही रखा जाए ताकि यह आगम मुनि मनक जैसे श्रमणों की आराधना का निमित्त बनें। साधक इस सार भूत सूत्र का अध्ययन कर व इसे आत्मसात कर अपनी साधना को सफल बना सके। अतः मोक्षभिलाषी साधकों के लिए दशवैकालिक सूत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

संक्षेप में इसमें श्रमणाचार के सभी नियमों का सांगोपांग वर्णन किया गया है। जिसका अध्ययन एवं आचरण कर साधक अपने परम लक्ष्य को प्राप्त करता है।



2. दशवैकालिक सूत्र

'दुमपुप्फिया' नामक प्रथम अध्ययन

इस अध्ययन में सत्य धर्म का स्वरूप व मधुकरी वृत्ति (भ्रमर जीवन) के दृष्टांत के माध्यम से भिक्षु के आहार ग्रहण का स्वरूप प्रतिपादित किया है।

मधुकरी वृत्ति का मूल केन्द्र द्रुम पुष्प होने से इस अध्ययन का नाम "दुम पुप्फिया" (द्रुम पुष्पिका) रखा गया है।

धम्मो मंगलमुक्किटठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं णमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥1॥

अन्वयार्थ – अहिंसा – प्राणियों की हिंसा का त्याग करना तथा जीवों की रक्षा करना, **संजमो**–संयम और **तवो**–तपरूप **धम्मो**–श्रुत-चारित्र रूप धर्म, **मंगलं**–कल्याणकारी और **उक्किट्ठं**–श्रेष्ठ है। **जस्स** – जिस का, **मणो**–मन, **सया**–सदा, **धम्मे**–धर्म में लगा रहता है, **तं**–उसको, **देवा**–देव, **वि**–भी, **णमंसंति**– नमस्कार करते हैं॥1॥

भावार्थ – श्रुत-चारित्र रूप धर्म में लीन प्राणी देवों का भी पूज्य बन जाता है।

जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं।
ण य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं ॥2॥

अन्वयार्थ- जहा– जिस प्रकार, **भमरो** – भ्रमर, **दुमस्स**– वृक्ष के, **पुप्फेसु**–फूलों में से, **रसं**– रस को, **आवियइ** – पीता है, **य** – और, **पुप्फं** – फूल को, **ण किलामेइ** – पीड़ित नहीं करता, **य**– और **सो**– वह भ्रमर, **अप्पयं** – अपनी आत्मा को, **पीणेइ**– संतुष्ट कर लेता है ॥2॥

भावार्थ – जैसे भ्रमर अनेक वृक्षों के फूलों से थोड़ा–थोड़ा रस चूसता है। इस प्रकार वह फूलों को कष्ट नहीं पहुंचाता हुआ अपनी आत्मा को संतुष्ट कर लेता है।

एमेए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो।
विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया ॥3॥

अन्वयार्थ – **एमेए**–इसी प्रकार ये, **लोए**– लोक में, **जे**–जो, **मुत्ता** – द्रव्य भाव परिग्रह से मुक्त, **समणा** – श्रमण तपस्वी, **साहुणो**– साधु, **संति** – हैं वे, पु

– फूलों में, **विहंगमा** –पक्षियों के, **व**–समान, **दाणभत्तेसणे** – दाता द्वारा दिए हुए आहारादि की गवेषणा में, **रया** – रत रहते हैं ॥3॥

भावार्थ – साधु, गृहस्थियों को असुविधा न पहुंचाते हुए अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा प्रासुक आहारादि ग्रहण करने में ठीक उसी प्रकार रत रहते हैं, जिस प्रकार भ्रमर पुष्पों में रत रहते हैं।

गुरु महाराज के समक्ष शिष्य प्रतिज्ञा करता है –

वयं च वित्तिं लब्भामो, ण य कोई उवहम्मइ ।
अहागडेसु रीयंते, पुप्फेसु भमरा जहाँ ॥ 4॥

अन्वयार्थ – **जहाँ**– जिस प्रकार, **पुप्फेसु**– फूलों में, **भमरा**–भ्रमर, **रीयंते** – अपना निर्वाह करते हैं, **च** – उसी प्रकार, **वयं**– हम साधु, **अहागडेसु** – गृहस्थों द्वारा अपने लिए बनाए हुए आहारादि की, **वित्तिं**– भिक्षा, **लब्भामो**– ग्रहण करेंगे, **य**– जिससे, **कोइ**– किसी जीव को, **ण उवहम्मइ**– कष्ट न हो ॥4॥

भावार्थ– भ्रमर की भांति साधु भी गृहस्थों द्वारा अपने लिए बनाए हुए आहार में से थोड़ा–थोड़ा लेकर अपनी संयम–यात्रा का निर्वाह करते हैं ।

महुगारसमा बुद्धा, जे भवंति अणिस्सिया ।
णाणापिंडरया दंता, तेण वुच्चंति साहुणो । त्ति बेमि।

अन्वयार्थ – **जे**– जो, **बुद्धा**– तत्व के जानने वाले हैं और **महुगारसमा** – भ्रमर के समान, **अणिस्सिया**–कुलादि के प्रतिबंध से रहित, **भवंति** – हैं और **णाणापिंडरया** – अनेक घरों से थोड़ा–थोड़ा आहारादि लेने में संतुष्ट हैं तथा **दंता** – इंद्रियों को दमन करने वाले हैं, **तेण** –इसीसे वे, **साहुणो** – साधु, **वुच्चंति**– कहलाते हैं ॥5॥ **त्ति बेमि** -श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं – 'हे आयुष्मन् जम्बू !' मैंने जैसा भगवान् महावीर से सुना है, वैसा ही कहा है।'

भावार्थ – जो तत्व को जानने वाले हैं, भ्रमर के समान कुलादि के प्रतिबंध से रहित हैं, अनेक घरों से थोड़ा–थोड़ा आहार लेकर अपनी उदरपूर्ति करते हैं और जो इंद्रियों का दमन करते हैं, वे साधु कहलाते हैं।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

'सामण्णपुव्वयं' नामक द्वितीय अध्ययन

इस अध्ययन में साधु को संयम में धैर्यवान होने व विषय वासनाओं से चंचल बने चित्त को संयम में स्थिर करने का सुन्दर उपाय बताया है।

श्रमण धर्म का सम्यक् पालन करने से पूर्व (पहले) काम विकार का निवारण किया जाता है, यहां उसी का वर्णन होने से इस अध्ययन का नाम "सामण्ण पुव्वयं" (श्रमण्य पूर्वक) रखा गया है।

कहण्णु कुज्जा सामण्णं, जो कामे ण णिवारए।
पए पए विसीयंतो, संकप्पस्स वसं गओ ।।1।।

अन्वयार्थ– जो–जो, **कामे**–काम–भोगों को, **ण**–नहीं, **णिवारए**–त्यागता है,वह, **संकप्पस्स**– इच्छाओं के, **वसं गओ**– वश में होकर, **पए पए** – पद–पद पर, **विसीयंतो**– खेदित होकर, **सामण्णं** – श्रमण धर्म का,**कहण्णु**– किस प्रकार, **कुज्जा**– पालन कर सकता है ।।1।।

भावार्थ – जो इन्द्रियों के विषयों का त्याग नहीं करता, उसकी इच्छाएं हमेशा बढ़ती रहती हैं, उसे कभी सन्तोष नहीं होता। सन्तोष न होने से मानसिक कष्ट होता है, जिससे चारित्र–धर्म की आराधना नहीं हो सकती। अतः सर्वप्रथम इन्द्रियों को वश में करना चाहिए।

वत्थगंधमलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य।
अच्छंदा जे ण भुंजंति, ण से चाइत्ति वुच्चइ ।।2।।

अन्वयार्थ – **जे**– जो पुरुष, **अच्छंदा** – पराधीन होने के कारण, **वत्थ**–वस्त्र, **गंध**– गन्ध, **अंलकारं**– आभूषण , **इत्थीओ**- स्त्रियों को और **सयणाणि**– शय्या को, **ण** – नहीं, **भुंजंति**– भोगता है, **से** – वह **चाइत्ति** – त्यागी, **ण**–नहीं, **वुच्चइ** – कहा जाता है ।।2।।

भावार्थ – जो पुरुष रोग आदि किसी कारण से पराधीन होकर विषयों का सेवन नहीं कर सकता, वह त्यागी नहीं कहलाता, किन्तु अपनी इच्छा से विषयों का त्याग करने वाला ही वास्तव में सच्चा त्यागी कहलाता है।

जे य कंते पिए भोए, लद्धे वि पिट्ठिकुव्वइ ।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइत्ति वुच्चइ ॥3॥

अन्वयार्थ – **जे**– जो पुरुष, **लद्धे**– प्राप्त हुए, **वि**–भी, **कंते**– मनोहर, **पिए**- प्रिय, **भोए**–भोगने योग्य, **य**–और, **साहीणे**–स्वाधीन, **भोए**–भोगों को, **पिट्ठिकुव्वइ** – उदासीनतापूर्वक, **चयइ**–त्याग देता है, **से** – वह, **हु**– निश्चय से, **चाइत्ति**– त्यागी, **वुच्चइ**– कहलाता है ।

भावार्थ – भोगों की प्राप्ति होने पर भी और भोगों की स्वतंत्रता रहते हुए भी जो भोगों को नहीं भोगता, वही आदर्श त्यागी कहलाता है ।

समाइ पेहाइ परिव्वयंतो, सिया मणो णिस्सरइ बहिद्धा ।
ण सा महं णोवि अहं पि तीसे, इच्चेव ताओ विणएज्ज रागं ॥4॥

अन्वयार्थ – **समाइपेहाइ**– समभाव पूर्वक, **परिव्वयंतो** – संयम मार्ग में विचरण करते हुए साधु का, **मणो**– मन, **सिया**–कभी, **बहिद्धा**– संयम से बाहर, **णिस्सरइ**- निकल जाए, तो **सा** – वह स्त्री, **महं**– मेरी, **ण**– नहीं है, और, **अहं**– मैं, **पि**–भी, **तीसे**–उसका, **णो वि**-नहीं हूं, **इच्चेव**– इस प्रकार विचार कर, **ताओ**–उस स्त्री पर से, **रागं**– राग भाव को, **विणएज्ज**–दूर करें ॥4॥

आयावयाही चय सोगमल्लं, कामे कमाहि कमियं खु दुक्खं ॥
छिंदाहि दोसं विणएज्ज रागं, एवं सुही होहिसि संपराए ॥5॥

अन्वयार्थ – **आयावयाही** – आतापना लो और शरीर को तपस्या से सुखा डालो, **सोगमल्लं** –सुकुमारता को, **चय**– त्याग दो, **कामे**– काम-भोगों को, **कमाहि**- दूर करो, **खु**–निश्चय ही, **दुक्खं**– दुःख, **कमियं**– दूर होगा, **दोसं**– द्वेष को, **छिंदाहि** - नष्ट करो, **रागं** –राग को, **विणएज्ज**–दूर करो, **एवं** – ऐसा करने से, **संपराए**– संसार में, **सुही**–सुखी, **होहिसि**– होओगे ॥5॥

भावार्थ – पूर्वोक्त गाथा में सूत्रकर्त्ता ने मनोनिग्रह का अन्तरंग उपाय बतलाया है । अब मनोनिग्रह का बाह्य उपाय बतलाते हुए कहते हैं कि संयम से बाहर जाते हुए मन को वश में करने के लिए शरीर की सुकोमलता का त्याग कर के ऋतु अनुसार आतापना लेनी चाहिए, तपस्या करनी चाहिए और राग–द्वेष को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए । ऐसा करने से प्राणी सुखी होता है ।

पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं ।
णेच्छंति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे ।।6।।

अन्वयार्थ – अगंधणे– अगन्धन नामक, **कुले**–कुल में **जाया**–उत्पन्न हुए सर्प, **जलियं**–जलती हुई, **धूमकेउं**– धुआं निकलती हुई, **दुरासयं**–कठिनाई से सहने योग्य, **जोइं**– अग्नि में, **पक्खंदे**– गिर जाते हैं किन्तु, **वंतयं** – वमन किए हुए विष को, **भोत्तुं** – भोगने की, **ण इच्छंति**–इच्छा नहीं करते ।।6।।

भावार्थ – सती राजमती रथनेमि से कहती है कि अगंधन कुल में उत्पन्न हुए सर्प, अग्नि में जल कर मर जाना तो पसंद करते हैं, किन्तु उगले हुए विष को पुनः पीना नहीं चाहते ।

धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीवियकारणा ।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ।।7।।

अन्वयार्थ – अजसोकामी – हे अपयश के इच्छुक ! **ते**–तुझे, **धिरत्थु**– धिक्कार हो, **जो**– जो, **तं**-तू, **जीवियकारणा**– असंयम रूप जीवन के लिए, **वंतं**– वमन किए हुए को, **आवेउं**–पीना, **इच्छसि**–चाहता है । इसकी अपेक्षा तो, **ते**–तेरे लिए, **मरणं**–मर जाना, **सेयं** – श्रेष्ठ, **भवे**- हैं ।।7।।

भावार्थ – सती राजमती चंचल चित्त बने हुए रथनेमि को संयम में स्थिर करने के लिए उपदेश देती है कि संयम धारण करके असंयम में आना निन्दनीय है । ऐसे असंयम पूर्ण और पतित जीवन की अपेक्षा तो संयमावस्था में मृत्यु हो जाना अच्छा है ।

अहं च भोगरायस्स, तं च सि अंधगवण्हिणो ।
मा कुले गंधणा होमो, संजमं णिहुओ चर ।।8।।

अन्वयार्थ – अहं च– मैं राजमती, **भोगरायस्स**–भोजराज उग्रसेन की पुत्री हूँ, **च**–और, **तं**–तू, **अंधगवण्हिणो**–अन्धकवृष्णि– समुद्रविजय का पुत्र, **असि**– है, **गंधणा कुले** –गन्धन कुल में उत्पन्न सर्प के समान, **मा होमो**– मत हो किन्तु, **णिहुओ**–मन को स्थिर रखकर, **संजमं**– संयम का, **चर**–पालन कर ।।8।।

भावार्थ – राजमती, रथनेमि से कहती है कि अपन दोनों उच्च कुल में उत्पन्न हुए हैं । अतः उगले हुए विष को पुनः पी जाने वाले गन्धन कुल के साँप के समान न होना चाहिए ।

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि णारीओ ।
वायाविद्धुव्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥9॥

अन्वयार्थ – **तं**–हे मुनि ! तुम, **जा–जा** – जिन–जिन, **णारीओ**– स्त्रियों को, **दिच्छसि**– देखोगे, **जइ**–यदि उन–उन पर, **भावं**– बुरे भाव, **काहिसि**–करोगे तो, **वायाविद्धु**–वायु से प्रेरित, **हडोव्व**–हड नामक वनस्पति की भांति, **अट्ठिअप्पा**–अस्थिर आत्मा वाले, **भविस्ससि**– हो जाओगे ॥9॥

भावार्थ – राजमती रथनेमि से कहती है कि हे मुनि ! जिस किसी भी स्त्री को देखकर यदि तुम इस प्रकार काम–मोहित हो जाओगे, तो जैसे समुद्र के किनारे खड़ा हुआ हड नाम का वृक्ष हवा के एक झोकें से समुद्र में गिर पड़ता है, वैसे तुम्हारी आत्मा भी उच्च पद से नीचे गिर जाएगी ।

तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाइ सुभासियं ।
अंकुसेण जहा णागो, धम्मे संपडिवाइओ ॥10॥

अन्वयार्थ – **सो**–वह, रथनेमि, **तीसे**–उस, **संजयाइ**–संयमवती साध्वी के, **सुभासियं**– सुभाषित, **वयणं**– वचन, **सोच्चा**–सुनकर, **धम्मे**–धर्म में, **संपडिवाइओ**– स्थिर हो गया, **जहाँ**–जैसे, **अंकुसेण**– अंकुश से, **णागो**–हाथी वश में हो जाता है।

भावार्थ – ब्रह्मचारिणी राजमती के सुन्दर वचन सुनकर रथनेमि धर्म–मार्ग में उसी प्रकार स्थिर हो गए, जिस प्रकार अंकुश से हाथी वश में हो जाता है ।

एवं करेंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टंति भोगेसु, जहाँ से पुरिसुत्तमो ॥11॥ त्ति बेमि ।

अन्वयार्थ – **संबुद्धा**– तत्त्वज्ञ, **पंडिया**– पाप से डरने वाले पण्डित, **पवियक्खणा**– विचक्षण मनुष्य, **एवं** – ऐसा ही, **करेंति**– करते हैं अर्थात् **भोगेसु**– भोगों से, **विणियट्टंति**– निवृत्त हो जाते हैं, **जहाँ**–जैसे, **से**–वह **पुरिसुत्तमो**–पुरुषों में उत्तम रथनेमि भोगों से निवृत्त हो गया ॥11॥ **त्ति बेमि**– हे जम्बू ! जैसा मैंने भगवान् से सुना है, वैसा ही कहता हूँ।

भावार्थ – जो विवेकी होते हैं, वे विषय–भोगों के दोषों को जानकर उनका परित्याग उसी प्रकार कर देते हैं, जैसे रथनेमि ने कर दिया ।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

'खुड्डियायार कहा' नामक तृतीय अध्ययन

जो निर्ग्रन्थ महर्षियों के आचरण करने योग्य नहीं हैं, ऐसे 52 अनाचारों का वर्णन इस अध्ययन में किया गया है। इसी शास्त्र के छठे अध्ययन में विस्तार के साथ श्रमण आचार का वर्णन किया गया है। उस अपेक्षा से संक्षिप्त (अल्प रूप) में अनाचरणीय विषयों का निषेध कर आचार का प्रतिपादन होने से इस अध्ययन का नाम "खुड्डियायार कहा" (क्षुल्लकाचार कथा) रखा गया है।

संजमे सुट्ठिअप्पाणं विप्पमुक्काण ताइणं ।
तेसिमेयमणाइण्णं, णिग्गंथाण महेसिणं ॥1॥

अन्वयार्थ – संजमे – संयम में, **सुट्ठिअप्पाणं**– भली भांति स्थिर आत्मा वाले, **विप्पमुक्काण**– सांसारिक बन्धनों से रहित, **ताइणं**– छः काय जीवों के रक्षक, **तेसिं**– उन, **णिग्गंथाण**– परिग्रह रहित, **महेसिणं**– महर्षियों के, **एयं**– ये–आगे कहे जाने वाले, **अणाइण्णं**– अनाचार हैं।

उद्देसियं कीयगडं, णियागमभिहडाणि य ।
राइभत्ते सिणाणे य, गंधमल्ले य वीयणे ॥2॥

अन्वयार्थ – 1. उद्धेसियं– औद्देशिक, **2. कीयगडं**–साधु के लिए खरीदा हुआ, **3. णियागं**– किसी का आमंत्रण स्वीकार कर उसके घर से लिया हुआ आहार, **4. अभिहडाणि**– साधु के लिए सामने लाया हुआ, **य**–और, **5. राइभत्ते**– रात्रि भोजन, **य**–और, **6. सिणाणे**–स्नान, **7. गंध**– सुगंधित पदार्थों का सेवन, **8. मल्ले**– फूलादि की माला, **य**–और, **9. वीयणे**–पंखादि से हवा लेना ॥2॥

संणिही गिहिमत्ते य, रायपिंडे किमिच्छए ।
संवाहणा दंतपहोयणा य, संपुच्छणा देहपलोयणा य ॥3॥

अन्वयार्थ – 10, संणिही– घी गुड़ आदि वस्तुओं का संचय करना, **11. गिहिमत्ते**– गृहस्थ के पात्र में भोजन करना, **य**–और, **12. रायपिंडे**– राजपिंड का ग्रहण करना, **13, किमिच्छए**– 'तुमको क्या चाहिए' इस प्रकार याचक से पूछकर जहां उसकी इच्छानुसार दान दिया जाता हो, ऐसी दानशाला आदि से आहारादि लेना, **14. संवाहणा**–मर्दन करना, **य**–और, **15.दंतपहोयणा**– विभूषा के लिए अंगुली

आदि से दांत धोना, **16. संपुच्छणा**–गृहस्थों से सावद्य कुशल–प्रश्न आदि पूछना, **य**– और, **17. देहपलोयणा** – दर्पण आदि में मुख देखना ॥3॥

अट्ठावए य णालीए, छत्तस्स य धारणट्ठाए ।
तेगिच्छं पाहणा पाए, समारंभं च जोइणो ॥ 4॥

अन्वयार्थ – 18. अट्ठावए – जुआ खेलना, **य**–और, **णालीए**–चौपड़–पासा शतरंज आदि खेलना, **य**–और, **19. छत्तस्स धारणट्ठाए**–छत्र धारण करना, **20. तेगिच्छं**– रोग का इलाज करना, **21. पाए पाहणा**–पैरों में जूते आदि पहिनना, **च**–और **22. जोइणो**–अग्नि का, **समारंभं**– आरम्भ करना ॥4॥

सिज्जायरपिंडं च, आसंदी पलियंकए ।
गिहंतरणिसिज्जा य, गायस्सुव्वट्टणाणि य ॥5॥

अन्वयार्थ– 23. सिज्जायरपिंडं– शय्यातर का आहार लेना, **च**–और, **24. आसंदी**–बेंत आदि के बने हुए आसन पर बैठना, **25 पलियंकए**–पलंग पर बैठना, **26 गिहंतरणिसिज्जा**– गृहस्थ के घर बैठना या दो घरों के बीच बैठना, **य**–और, **27 गायस्सुव्वट्टणाणि**– मैल उतारने के लिए शरीर पर उबटन करना ।

गिहिणो वेयावडियं, जा य आजीववत्तिया ।
तत्ताणिव्वुडभोइत्तं, आउरस्सरणाणि य ॥6॥

अन्वयार्थ– 28 गिहिणो- गृहस्थ की, **वेयावडियं**-वैयावच्च करना अर्थात् उसे आहारादि देना, **य**- और, **जा**- जो, **29 आजीववत्तिया**-जाति, कुल आदि बताकर आजीविका करना, **30 तत्ताणिव्वुडभोइत्तं**- जो अच्छी तरह से प्रासुक नहीं हुआ है, ऐसे मिश्र आहार पानी का सेवन करना, **य**- और, **31 आउरस्सरणाणि**-रोग अथवा भूख से पीड़ित होने पर पहले भोगे हुए पदार्थों को याद करना या शरण चाहना॥6॥

मूलए सिंगबेरे य, उच्छुखंडे अणिव्वुडे ।
कंदे मूले य सच्चित्ते, फले वीए य आमए ॥ 7॥

अन्वयार्थ – 32. अणिव्वुडे–सचित्त, **मूलए**–मुला, **य**–और, **33. सिंगबेरे**–अदरख, **34. उच्छुखंडे**–इक्षुखण्ड–गंडेरी, **य**–और, **35. कंदे**–कन्द–वज्रकन्द आदि, **36. सच्चित्ते**– सचित्त, **मूले**–मूल–जड़, **37 फले**–फल, आम, नींबू आदि, **य**–और **38. आमए**– सचित्त, **वीए**–तिलादि बीजों का सेवन करना॥7॥

सोवच्चले सिंधवे लोणे, रोमालोणे य आमए ।
सामुद्दे पंसुखारे य, कालालोणे य आमए ॥8॥

अन्वयार्थ– 39. आमए–सचित्त, **सोवच्चले**–संचल नमक, **40. सिंधवे लोणे**– सैन्धव नमक, **41. रोमालोणे**– रोमा नमक, **42 सामुद्दे**–समुद्र का नमक, **य**–और **43. पंसुखारे**–ऊषर नमक, **य**–और, **44 आमए**–सचित्त, **कालालोणे**–काला नमक का सेवन करना ॥8॥

धूवणे त्ति वमणे य, वत्थीकम्म विरेयणे ।
अंजणे दंतवणे य, गायब्भंगविभूसणे ॥9॥

अन्वयार्थ– 45.**धूवणे त्ति**– अपने वस्त्र आदि को धूप दे कर सुगन्धित करना, **य**–और, **46.वमणे**–औषधि आदि से वमन करना, **47.वत्थीकम्म**–मलादि की शुद्धि के लिए बस्ती कर्म करना, **48. विरेयणे**– जुलाब लेना, **49. अंजणे**– आंखों में अंजन लगाना, **य**- और, **50. दंतवणे**- दतून से दांत साफ करना, मस्सी आदि लगाना, **51. गायाब्भंग**–सहस्त्रपाक शतपाक आदि तेलों से शरीर की मालिश करना, **य**–और, **52. विभूसणे**–शरीर को विभूषित करना ॥9॥

सव्वमेयमणाइण्णं, णिग्गंथाण महेसिणं ।
संजमम्मि य जुत्ताणं, लहुभूयविहारिणं ॥10॥

अन्वयार्थ– संजमम्मि–संयम, **य**–और तप में, **जुत्ताणं**–लगे हुए, **लहुभूयविहारिणं**–वायु के समान अप्रतिबंध विहार करने वाले, **णिग्गंथाण**–निर्ग्रंथ, **महेसिणं**–महर्षियों के, **एयं**–ये, **सव्वं**–सभी, **अणाइण्णं**–अनाचार हैं ॥10॥

पंचासवपरिण्णाया, तिगुत्ता छसु संजया ।
पंचणिग्गहणा धीरा, णिग्गंथा उज्जुदंसिणो ॥11॥

अन्वयार्थ– पंचासवपरिण्णाया–पांच आश्रवों के त्यागी, **तिगुत्ता**–मन, वचन और काय–गुप्ति से युक्त, **छसु संजया**–छः काय जीवों की रक्षा करने वाले, **पंचणिग्गहणा**–पांच इन्द्रियों के निग्रह करने वाले, **धीरा**–परीषह उपसर्ग सहन करने में धीर, **उज्जुदंसिणो**–सरल स्वभावी, **णिग्गंथा**–निर्ग्रन्थ होते हैं ॥11॥

आयावयंति गिम्हेसु, हेमंतेसु अवाउडा ।
वासासु पडिसंलीणा, संजया सुसमाहिया ॥12॥

अन्वयार्थ–सुसमाहिया–प्रशस्त समाधिवंत, **संजया**–संयमी मुनि, **गिम्हेसु**–ग्रीष्म ऋतु में, **आयावयंति**–सूर्य की आतापना लेते हैं, **हेमंतेसु**–हेमंत ऋतु में, **अवाउडा**–अल्प वस्त्र या वस्त्र रहित रहते हैं, **वासासु**–वर्षा ऋतु में, **पडिसंलीणा**–कछुए की तरह इन्द्रियों को वश में करके रहते हैं ॥12॥

भावार्थ–जिस ऋतु में जिस प्रकार की तपस्या से अधिक कायक्लेश होता है, उस ऋतु में मुनि वही तपस्या करते हैं।

परीसहरिउदंता, धूयमोहा जिइंदिया ।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ॥13॥

अन्वयार्थ–परीसहरिउदंता–परीषह रूपी शत्रुओं को जीतने वाले, **धूयमोहा**–मोह–ममता के त्यागी, **जिइंदिया**–इंद्रियों को जीतने वाले, **महेसिणो**–महर्षि, **सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा**–सभी दुःखों का नाश करने के लिए, मोक्ष प्राप्ति के लिए, **पक्कमंति**–पराक्रम करते हैं–संयम और तप में प्रवृत्त होते हैं ॥13॥

दुक्कराइं करित्ताणं, दुस्सहाइं सहित्तु य ।
के इत्थदेवलोएसु, केइ सिज्झंति णीरया ॥14॥

अन्वयार्थ–दुक्कराइं–दुष्कर क्रियाओं को, **करित्ताणं**–कर के, **य**–और, **दुस्सहाइं**–दुःसह कष्टों को, **सहित्तु**–सहनकर के, **केइ**–कितनेक, **देवलोएसु**–देवलोकों में उत्पन्न होते है और **केइत्थ**–कई इसी भव में , **णीरया**–कर्म–रज से रहित हो कर, **सिज्झंति**–सिद्ध हो जाते है–मोक्ष चले जाते हैं ॥14॥

खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य ।
सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता, ताइणो परिणिव्वुडे । त्ति बेमि ।

अन्वयार्थ– सिद्धिमग्गं – मोक्षमार्ग के, **अणुप्पत्ता**–साधक, **ताइणो**–छः काय जीवों के रक्षक मुनि, **संजमेण**–संयम से, **य**–और, **तवेण**–तप से, **पुव्वकम्माइं**–पहले बंधे हुए कर्मों को, **खवित्ता**–क्षय कर के, **परिणिव्वुडे**– निर्वाण प्राप्त करते हैं ॥15॥ **त्ति बेमि**–पूर्ववत् ।

॥ तीसरा अध्ययन समाप्त ॥

'छज्जीवणिया' नामक चतुर्थ अध्ययन

इस अध्ययन में छः काय जीवों का स्वरूप तथा उनकी रक्षा का उपाय बतलाया गया है। इस अध्ययन के प्रारम्भ में समग्र विश्व के छह प्रकार (निकाय) के जीवों के स्वरूप और प्रकार का वर्णन होने से इसका नाम "छज्जीवणिया" (षडजीवनिकाय) रखा गया है।

सुयं मे आउसं! तेणं भगवया एवमक्खायं, इह खलु छज्जीवणिया णामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपण्णत्ता सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती ॥1॥

अन्वयार्थ– आउसं–हे आयुष्यमन् शिष्य ! **मे**–मैंने, **सुयं**–सुना है कि, **तेणं**–उन, **भगवया**–भगवान् ने, **एवं**–इस प्रकार, **अक्खायं**–कहा है कि, **इह**–इस जिनशासन में, **खलु**–निश्चय से, **छज्जीवणिया**–छः काय के जीवों का कथन करने वाला, **णाम**–नामक, **अज्झयणं**–अध्ययन है, **समणेणं**–श्रमण–तपस्वी, **कासवेणं**–काश्यपगोत्रीय, **भगवया**–भगवान, **महावीरेणं**–महावीर ने, **पवेइया**–सम्यक् प्रकार से उसकी प्ररूपणा की है, **सुअक्खाया**–सम्यक् प्रकार से कथन किया है, **सुपण्णत्ता**–भली प्रकार से बतलाया है। शिष्य ने पूछा–भगवन् ! क्या, **अज्झयणं**–उस अध्ययन का, **अहिज्जिउं**–अध्ययन करना–सीखना, **मे**–मेरे लिए, **सेयं**–कल्याणकारी है। गुरु ने कहा–हाँ ! **धम्मपण्णत्ती**–उस अध्ययन को सीखने से धर्म का बोध होता है।

कयरा खलु सा छज्जीवणिया णामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपण्णत्ता सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती? ॥2॥

अन्वयार्थ–कयरा–वह छज्जीवणिया अध्ययन कौन–सा है, जिसका अध्ययन करना मेरे लिए कल्याणकारी है। शेष शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है।

इमा खलु सा छज्जीवणिया णामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपण्णत्ता सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती॥3॥

अन्वयार्थ– अब गुरु शिष्य के प्रश्न का उत्तर देते हैं कि **इमा**–वह छज्जीवणिया अध्ययन इस प्रकार है। शेष शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है।

तंजहा–पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, तसकाइया।

अन्वयार्थ–तंजहा–जैसे कि, **पुढविकाइया**–पृथ्वीकायिक–पृथ्वीकाय के जीव, **आउकाइया**–अप्कायिक (जल) के जीव, **तेउकाइया**–तेउकायिक (अग्निकाय) संबंधी जीव, **वाउकाइया**– वायु के जीव, **वणस्सइकाइया**–वनस्पतिकाय के जीव, **तसकाइया**–त्रस काय के जीव।

पुढवी चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अण्णत्थ सत्थपरिणएणं। आऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अण्णत्थ सत्थपरिणएणं। तेऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अण्णत्थ सत्थपरिणएणं। वाउचित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अण्णत्थ सत्थपरिणएणं। वणस्सइ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अण्णत्थ सत्थपरिणएणं ॥4॥

अन्वयार्थ–सत्थपरिणएणं– शस्त्र–परिणत के, **अण्णत्थ**–अतिरिक्त, **पुढवी**–पृथ्वीकाय, **आउ**–अप्काय, **तेउ**–अग्निकाय **वाउ**–वायुकाय और, **वणस्सई**–वनस्पतिकाय, **चित्तमंतमक्खाया**–सचित्त कही गई है, **अणेगजीवा**–यह अनेक जीवों वाली है, **पुढोसत्ता**–उसमें अनेक जीव पृथक–पृथक रहे हुए हैं।

भावार्थ–पांचों स्थावरकाय सचित्त हैं। वे अनेक जीव रूप हैं। उन जीवों का अस्तित्व पृथक–पृथक है। इन कायों के जो–जो शस्त्र हैं, उनसे जब तक परिणत न हो जाए अर्थात् दूसरा शस्त्र न लग जाए, तब तक ये सचित्त रहते हैं। शस्त्र–परिणत होने पर अचित्त हो जाते हैं। आगे वनस्पतिकाय का विशेष वर्णन करते हैं –

तंजहा–अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खंधबीया, बीयरूहा, संमुच्छिमा, तणलया, वणस्सइकाइया, सबीया चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अण्णत्थ सत्थपरिणएणं ॥5॥

अन्वयार्थ–तंजहा– वह इस प्रकार है, **अग्गबीया**–ऐसी वनस्पति जिसका बीज अग्रभाग पर होता है, जैसे कोरंट का वृक्ष, **मूलबीया**–जिसका बीज मूल भाग में होता है, जैसे कंद आदि, **पोरबीया**–जिसका बीज (पर्व गाँठ) में होता है, जैसे गन्ना आदि, **खंधबीया**–जिसका बीज स्कन्ध में होता है, जैसे बड़, पीपल आदि, **बीयरूहा**–बीज से उगने वाली वनस्पति, जैसे-गेहूँ, जौ, चावल आदि चौबीस प्रकार के धान्य,

संमुच्छिमा–बिना बीज के अपने आप उत्पन्न होने वाली वनस्पति, जैसे घास, दूब, अंकुर आदि, **तणलया**–तृण, लता आदि ये सब, **वणस्सइकाइया**–वनस्पतिकायिक हैं , **अणेगजीवा**–उसमें अनेक जीव हैं, **पुढोसत्ता**–वे भिन्न–भिन्न सत्ता वाले हैं, **सत्थपरिणएणं**–शस्त्र परिणत के, **अण्णत्थ**–अतिरिक्त, **सबीया**–बीज सहित वनस्पति, **चित्तमंतमक्खाया**–सचित्त कही गई हैं । अब त्रसकाय का वर्णन किया जाता है–

से जे पुण इमे अणेगे बहवे तसा पाणा तंजहा–अंडया पोयया जराउया रसया संसेइमा संमुच्छिमा उब्भिया उववाइया। जेसिं केसिं च पाणाणं अभिक्कंतं पडिक्कंतं संकुचियं पसारियं रुयं भंतं तसियं पलाइयं आगइगइविण्णाया जे य कीडपयंगा, जा य कुंथु–पिवीलिया सव्वे बेइंदिया सव्वे तेइंदिया सव्वे चउरिंदिया सव्वे पंचिंदिया सव्वे तिरिक्खजोणिया सव्वे णेरइया सव्वे मणुआ सव्वे देवा सव्वे पाणा परमाहम्मिया। एसो खलु छट्ठो जीवनिकाओ तसकाओ त्ति पवुच्चइ॥6॥

अन्वयार्थ–से– अब, **जे**–जो, **इमे**–ये आगे कहे जाने वाले, **तसा पाणा**– त्रस प्राणी हैं, वे **पुण**–फिर, **अणेगे**–अनेक तथा, **बहवे**–बहुत प्रकार के हैं। **तंजहा**–जैसे कि, **अंडया**–अंडे से उत्पन्न होने वाले, **पोयया**–पोतज (जन्म के समय चर्म से आवृत्त होकर कोथली सहित उत्पन्न होने वाले) **जराउया**–जरायु सहित पैदा होने वाले, **रसया**–रस में उत्पन्न होने वाले द्वीन्द्रियादि, **संसेइमा**–पसीने से उत्पन्न होने वाले, **संमुच्छिमा**–समूर्च्छिम (देव नारकी के अतिरिक्त बिना माता–पिता के संयोग से होने वाली जीवों की उत्पत्ति) **उब्भिया**–जमीन फोड़कर उत्पन्न होने वाले, **उववाइया**–उपपात जन्म वाले देव नारकी, **जेसिं केसिं च**– इनमें से कोई–कोई, **पाणाणं**– प्राणी **अभिक्कंतं**–सामने आना, **पडिक्कंतं**–पीछे सरकना, **संकुचियं**–शरीर को संकुचित कर लेना, **पसारियं**–शरीर को फैलाना, **रुयं**–शब्द का उच्चारण करना, **भंतं**–इधर–उधर भ्रमण करना, **तसियं**–भयभीत होना, **पलाइयं**–डर से भागना, **आगइगइ**–आगति और गति, **विन्नाया**–आदि क्रियाओं को जानने वाले हैं, **य**–और **जे**–जो, **कीडपयंगा**–कीड़े और पतंगे हैं, **य**–और **जा**–जो, **कुंथुपिवीलिया**–कुंथुवा और चीटियाँ हैं, वे **सव्वं**–सभी **बेइंदिया**–बेइन्द्रिय, **सव्वे**–सभी, **तेइंदिया**–तेइंद्रिय–**सव्वे**–सभी, **चउरिंदिया**–चौरिन्द्रिय, **सव्वे**–सभी, **पंचिंदिया**–पंचेन्द्रिय, **सव्वे**–सभी, **तिरिक्खजोणिया**–तिर्यंच, **सव्वे**–सभी, **णेरइया**–नारकी के जीव, **सव्वे**–सभी, **मणुआ**–मनुष्य, **सव्वे**–सभी, **देवा**–देव, **सव्वे**–सभी, **पाणा**–प्राणी, **परमाहम्मिया**–परम सुख के अभिलाषी

हैं। ऐसो–यह, खलु–निश्चय करके छट्ठो–छठा, जीवनिकाओ–जीवनिकाय, तसकाओत्ति–त्रसकाय, पवुच्चइ–कहा जाता है।

भावार्थ–सभी प्राणी सुख को चाहते हैं। अतः किसी की हिंसा नहीं करनी चाहिए।

इच्चेसिं छण्हं जीवनिकायाणं णेव सयं दंडं समारंभिज्जा, णेवण्णेहिं दंडं समारंभाविज्जा, दंडं समारंभंतेऽवि अण्णे ण समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ण करेमि ण कारवेमि करंतं पि अण्णं ण समणुजाणामि तस्स भंते ! पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि॥7॥

अन्वयार्थ–मुनि, **इच्चेसिं**–इन, **छण्हं**–छः, **जीवनिकायाणं**–जीवनिकायों के, **दंडं**–हिंसा रूप दंड का, **सयं**–स्वयं, **णेव समारंभिज्जा**–आरम्भ न करे, **अण्णेहिं**–दूसरों से, **दंडं**–हिंसा रूप दंड का, **णेव समारंभाविज्जा**–आरम्भ न करावे और, **दंडं**–हिंसा रूप दण्ड का, **समारंभंते**–आरम्भ करते हुए, **अण्णेवि**–अन्य जीवों को, **ण समणुजाणिज्जा**–भला भी न समझें। अब शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन् ! मैं **जावज्जीवाए**–जीवन पर्यंत, **तिविहं**–तीन करण से–करना, कराना और अनुमोदना से और **तिविहेणं**–तीन योग अर्थात्, **मणेणं**–मन से, **वायाए**–वचन से, और **काएणं**–काया से, **ण करेमि**–न करूँगा, **ण कारवेमि**–न कराऊँगा और **करंतंपि**–करते हुए, **अण्णं**–दूसरे को, **ण समणुजाणामि**–भला भी नहीं समझूँगा। **भंते**–हे भगवन् ! **तस्स**–उस दण्ड का, **पडिक्कमामि**–प्रतिक्रमण करता हूँ, **णिंदामि**–आत्मसाक्षी से निंदा करता हूँ, **गरिहामि**–गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ। **अप्पाणं**–हिंसा–दण्ड सेवन करने वाले पापात्मा को, **वोसिरामि**–त्यागता हूँ।

पढमे भंते ! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वं भंते ! पाणाइवायं पच्चक्खामि, से सुहुमं वा, बायरं वा, तसं वा, थावरं वा, णेव सयं पाणे अइवाइज्जा, णेवण्णेहिं पाणे अइवायाविज्जा, पाणे अइवायंते वि अण्णे ण समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ण करेमि ण कारवेमि करंतं पि अण्णं ण समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। पढमे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं॥8॥ (1)

अन्वयार्थ– भंते– हे भगवन् ! **पढमे**–प्रथम, **महव्वए**–महाव्रत में, **पाणाइवायाओ**–प्राणातिपात से, **वेरमणं**–निवर्तन होता है, अतः **भंते**–हे भगवन् ! मैं, **सव्वं**–सभी प्रकार की, **पाणाइवायं**–प्राणातिपात रूप हिंसा का, **पच्चक्खामि**–त्याग करता हूँ, **से**–अभी से लेकर, **सुहुमं**–सूक्ष्म, **वा**–अथवा, **बायरं**–बादर, **तसं**–त्रस, **वा**–अथवा, **थावरं**–स्थावर प्राणियों के, **पाणे**–प्राणों को, **सयं**–स्वयं, **ण अइवाइज्जा**–हनन नहीं करूँगा और **णेवण्णेहिं** न दूसरों से , **पाणे**–प्राणियों के प्राणों का, **अइवायाविज्जा**–हनन कराऊँगा। **पाणे**–प्राणियों के प्राणों का, **अइवायंते**–हनन करने वाले, **अण्णेवि**–दूसरों को, **ण समणुजाणिज्जा**–भला भी नहीं जानूँगा, **जावज्जीवाए**–जीवन पर्यन्त, **तिविहं**–तीन करण (करना, कराना, अनुमोदना) से , **तिविहेणं**–तीन योग अर्थात् **मणेणं**–मन से, **वायाए**–वचन से, **काएणं**–काया से, **ण करेमि**–न करूँगा, **ण कारवेमि**–न कराऊंगा, **करंतंपि**–करते हुए, **अण्णे**–दूसरों को, **ण समणुजाणामि**–भला भी नहीं समझूँगा, **भंते**–हे भगवन् ! मैं **तस्स**–उस हिंसा रूपी पाप से, **पडिक्कमामि**–निवृत्त होता हूँ, **णिंदामि**–उस पाप की निंदा करता हूं, **गरिहामि**–गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ, **अप्पाणं**–हिंसा रूप दंड सेवन करने वाली आत्मा को, **वोसिरामि**–त्यागता हूँ, **भंते**–हे भगवन् ! मैं **सव्वाओ**–सभी, **पाणाइवायाओ**–प्राणातिपात से, **वेरमणं**–निवृत्ति रूप, **पढमे**–प्रथम, **महव्वए**–महाव्रत में, **उवट्ठिओमि**–उपस्थित होता हूँ।

भावार्थ–शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन् ! मैं प्रथम महाव्रत के पालन में उपस्थित (उद्दत) होता हूँ और पूर्वकाल में किए हुए हिंसा संबंधी पाप से निवृत्त होता हूँ।

अहावरे दुच्चे भंते ! महव्वए मुसावायाओ वेरमणं, सव्वं भंते ! मुसावायं पच्चक्खामि, से कोहा वा, लोहा वा भया वा, हासा वा, णेव सयं मुसं वइज्जा, णेवण्णेहिं मुसं वायाविज्जा, मुसं वयंते वि अण्णे ण समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ण करेमि ण कारवेमि करंतं पि अण्णं ण समणुजाणामि! तस्स भंते ! पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। दुच्चे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं ॥9॥ (2)

अन्वयार्थ–**भंते**–भगवन् ! **अहावरे**–इसके बाद, **दुच्चे**–दूसरे, **महव्वए**–महाव्रत में , **मुसावायाओ**–मृषावाद से, **वेरमणं**–निवर्तन होता है। **भंते**–हे भगवन् ! मैं, **सव्वं**–

सभी प्रकार के, मुसावायं–मृषावाद का, पच्चक्खामि–त्याग करता हूँ। से–वह इस प्रकार, कोहा–क्रोध से, वा–अथवा, लोहा वा–लोभ से, भया वा–भय से, अथवा, हासा वा–हँसी से, सयं–मैं स्वयं, मुसावायं–असत्य, णेव वइज्जा–नहीं बोलूँगा, णेवण्णेहिं–न दूसरों से, मुसं–असत्य, वायाविज्जा–बोलाऊँगा, मुसं–असत्य वयंतेऽपि–वोलते हुए, अण्णे–दूसरों को, ण समणुजाणिज्जा–भला भी नहीं समझूँगा 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। भंते–हे भगवन्! मैं, सव्वाओ–सभी, मुसावायाओ–मृषावाद से, वेरमणं–त्याग रूप, दुच्चे–दूसरे, महव्वए–महाव्रत में, उवट्ठिओमि–उपस्थित होता हूँ।

अहावरे तच्चे भंते ! महव्वए अदिण्णादाणाओ वेरमणं। सव्वं भंते ! अदिण्णादाणं पच्चक्खामि, से गामे वा, णगरे वा, रण्णे वा, अप्पं वा, वहुं वा, अणुं वा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा, णेव सयं अदिण्णं गिण्हिज्जा, णेवण्णेहिं अदिण्णं गिण्हाविज्जा, अदिण्णं गिण्हंते वि अण्णे ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ण करेमि ण कारवेमि करंतं पि अण्णं ण समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

तच्चे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं॥10॥ (3)

अन्वयार्थ–भंते– हे भगवन् ! अहावरे– इसके वाद, तच्चे–तीसरे, महव्वए–महाव्रत में, अदिण्णादाणाओ–अदत्तादान से, वेरमणं–निवर्तन होता है, भंते–हे भगवन्! मैं, सव्वं–सभी प्रकार के, अदिण्णादाणं–अदत्तादान का, पच्चक्खामि–प्रत्याख्यान करता हूँ, से–वह इस प्रकार कि, गामे–ग्राम में , वा–अथवा णगरे वा–नगर में अथवा, रण्णे वा–वन में, अप्पं वा–अल्प अथवा, वहुं वा–वहुत, अणुं–सूक्ष्म, वा–अथवा, थूलं वा–स्थूल, चित्तमंतं वा–सचेतन अथवा, अचित्तमंतं वा–अचेतन आदि किसी भी, अदिण्णं–विना दिए हुए पदार्थ को, सयं–मैं स्वयं, णेवगिण्हिज्जा–ग्रहण नहीं करूँगा, णेवण्णेहिं–न दूसरों से, अदिणं–विना दिए हुए पदार्थ को, गिण्हाविज्जा–ग्रहण कराऊँगा और अदिणं–विना दिए हुए पदार्थ को, गिण्हंते वि–ग्रहण करते हुए, अण्णे–दूसरों को, ण समणुजाणिज्जा–भला भी नहीं समझूँगा। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। भंते–हे भगवन ! मैं, अदिणादाणाओ–

अदत्तादान से, **वेरमणं**–निवृत्ति रूप, **तच्चे**–तीसरे, **महव्वए**–महाव्रत में, **उवट्ठिओमि**–उपस्थित होता हूँ।

अहावरे चउत्थे भंते ! महव्वए मेहुणाओ वेरमणं । सव्वं भंते ! मेहुणं पच्चक्खामि, से दिव्वं वा, माणुसं वा, तिरिक्खजोणियं वा, णेव सयं मेहुणं सेविज्जा, णेवण्णेहिं मेहुणं सेवाविज्जा, मेहुणं सेवंते वि अणे ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ण करेमि ण कारवेमि करंतं पि अणं ण समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । चउत्थे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ [illegible]

अन्वयार्थ–**भंते**–हे भगवन् ! **अहावरे**–इसके बाद, **चउत्थे**–चौथे, **महव्वए**–
[illegible]
सभी प्रकार के, **मेहुणं**–मैथुन का, **पच्चक्खामि**–प्रत्याख्यान करता हूँ, **से**–वह इस प्रकार की, **दिव्वं**–देव संबंधी, **वा**–अथवा, **माणुसं**–मनुष्य संबंधी **वा**–अथवा **तिरिक्खजोणियं**–तिर्यंच संबंधी, इन तीनों जातियों में किसी के भी साथ, **मेहुणं**–मैथुन, **सयं**–मैं स्वयं, **णेवसेविज्जा**–सेवन नहीं करूँगा, **णेवण्णेहिं**–न दूसरों से, **मेहुणं**–मैथुन, **सेवाविज्जा**–सेवन कराऊँगा और **मेहुणं**–मैथुन, **सेवंतेऽवि**–सेवन करने वाले, **अण्णे**–दूसरों को, **ण समणुजाणिज्जा**–भला भी नहीं समझूंगा। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् हैं। **भंते**–हे भगवन् ! मैं, **सव्वाओ**–सभी प्रकार के, **मेहुणाओ**–मैथुन से, **वेरमणं**–निवृत्ति रूप, **चउत्थे**–चौथे, **महव्वए**–महाव्रत में, **उवट्ठिओमि**–उपस्थित होता हूँ।

अहावरे पंचमे भंते ! महव्वए परिग्गहाओ वेरमणं । सव्वं भंते ! परिग्गहं पच्चक्खामि से अप्पं वा, बहुं वा, अणुं वा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा, णेव सयं परिग्गहं परिगिण्हिज्जा, णेवण्णेहिं परिग्गहं परिगिण्हाविज्जा परिग्गहं परिगिण्हंतेवि अण्णे ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ण करेमि ण कारवेमि करंतं पि अण्णं ण समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । पंचमे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं ।।12।। (5)

अन्वयार्थ–भंते– हे भगवन् ! अहावरे–इसके बाद, पंचमे–पाँचवें, महव्वए–महाव्रत में, परिग्गहाओ–परिग्रह से, वेरमणं–निवर्तन होता है। अतः, भंते–हे भगवन्! मैं, सव्वं–सभी प्रकार के, परिग्गहं–परिग्रह का, पच्चक्खामि–त्यागता हूँ, से–वह इस प्रकार है–अप्पं वा–अल्प अथवा बहुं वा–बहुत, अणुं वा–सूक्ष्म अथवा, थूलं वा–स्थूल, चित्तमतं वा–सचेतन, अचित्तमंतं वा–अथवा अचेतन, परिग्गहं–परिग्रह, सयं–मैं स्वयं, णेव परिगिण्हिज्जा–ग्रहण नहीं करूँगा, णेवऽण्णेहिं–न दूसरों से, परिग्गहं–परिग्रह को, परिगिण्हाविज्जा–ग्रहण कराऊँगा, परिग्गहं–परिग्रह को, परिगिण्हंतेऽवि–ग्रहण करने वाला, अण्णे–दूसरों को, ण समणुजाणिज्जा–भला भी न समझूँगा। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। भंते–हे भगवन्! मैं सव्वाओ–सभी प्रकार के, परिग्गहाओ–परिग्रह से, वेरमणं–निवर्तन रूप, पंचमे–पाँचवें, महव्वए–महाव्रत में, उवट्ठिओमि–उपस्थित होता हूँ।

भावार्थ–शिष्य सभी प्रकार के परिग्रह से विरमण रूप पाँचवें महाव्रत को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करता है।

अहावरे छट्ठे भंते ! वए राइभोयणाओ वेरमणं। सव्वं भंते ! राइभोयणं पच्चक्खामि, से असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, णेव सयं राइं भुंजिज्जा, णेवण्णेहिं राइं भुंजाविज्जा, राइं भुंजंते वि अण्णे ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ण करेमि ण कारवेमि करंतं पि अण्णं न समणुजाणामि। तस्स भंते। पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। छट्ठे भंते ! वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमणं।

इच्चेयाइं पंच महव्वयाइं राइभोयणवेरमणछट्ठाइं अत्तहियट्ठयाए, उवसंपज्जित्ता णं विहरामि॥13॥ (6)

अन्वयार्थ–भंते– हे भगवन् ! अहावरे–इसके बाद, छट्ठे–छठे, वए–व्रत में, राइभोयणाओ–रात्रि–भोजन का, वेरमणं–त्याग होता है, अतः भंते–हे भगवन् ! मैं, सव्वं–सभी प्रकार के, राइभोयणं–रात्रि–भोजन का, पच्चक्खामि–त्याग करता हूँ। से–वह इस प्रकार है कि, असणं वा– अन्नादि अथवा, पाणं वा–पानी आदि अथवा, खाइमं वा–खाद्य, मेवा अथवा, साइमं वा–स्वाद्य–लौंग, इलायची आदि, सयं–मैं स्वयं, राइं–रात्रि में, णेव–नहीं, भुंजिज्जा– खाऊँगा, णेवण्णेहिं– न दूसरों को, राइं–रात्रि में, भुंजाविज्जा– खिलाऊँगा और राइं– रात्रि में, भुंजंतेऽवि–भोजन करने वाले, अण्णे– दूसरों को, ण समणुजाणिज्जा– भला भी न समझूँगा। 'जावज्जीवाए से

वोसिरामि' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। **भंते**- हे भगवन्! मैं, **सव्वाओ**- सभी प्रकार के, **राइभोयणाओ**- रात्रि भोजन से, **वेरमणं**-निवृत्ति रूप, **छट्ठे**- छठे, **वए**-व्रत में, **उवट्ठिओमि**- उपस्थित होता हूँ।

इच्चेयाइं–ये पहले कहे हुए, **पंच महव्वयाइं**–पांच महाव्रतों को और **राइभोयणवेरमण छट्ठाइं**–रात्रि भोजन विरमण रूप छठे व्रत को, **अत्तहियट्ठयाए**–आत्म–कल्याण के लिए, **उवसंपज्जित्ता णं**–स्वीकार कर के मैं, **विहरामि**–संयम में विचरता हूँ।

भावार्थ– अपनी आत्मा के कल्याण के लिए शिष्य अहिंसा आदि पांच महाव्रतों और छठे रात्रि भोजन त्याग रूप व्रत का पालन करने की प्रतिज्ञा करता है।

छः काय के जीवों की रक्षा के बिना चारित्र–धर्म का पालन नहीं हो सकता है। अतः छःकाय के जीवों की रक्षा के विषय में सूत्रकार कहते हैं–

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय–विरय–पडिहय–पच्चक्खाय–पावकम्मे दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से पुढविं वा, भित्तिं वा, सिलं वा, लेलुं वा, ससरक्खं वा कायं, ससरक्खं वा वत्थं, हत्थेण वा, पाएण वा, कट्ठेण वा, किलिंचेण वा, अंगुलियाए वा, सिलागाए वा, सिलागहत्थेण वा, ण आलिहिज्जा, ण विलिहिज्जा, ण घट्टिज्जा, ण भिंदिज्जा, अण्णं ण आलिहाविज्जा, ण विलिहाविज्जा, ण घट्टाविज्जा, ण भिंदाविज्जा, अण्णं आलिहंतं वा, विलिहंतं वा, घट्टंतं वा, भिंदंतं वा, ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ण करेमि ण कारवेमि करंतं पि अण्णं ण समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि॥14॥ (1)

अन्वयार्थ–संजय–विरय–पडिहय–पच्चक्खाय पावकम्मे–संयमी, पाप से विरक्त, कर्मों की स्थिति को प्रतिहत करने वाला तथा पाप–कर्मों के बंध का प्रत्याख्यान करने वाला, **से**–वह पूर्वोक्त महाव्रतों को धारण करने वाला, **भिक्खु**–साधु, **वा**–अथवा **भिक्खुणी वा**–साध्वी **दिया वा**–दिन में अथवा, **राओ वा**–रात्रि में, **एगओ वा**–अकेला अथवा, **परिसागओ वा**–साधु–समूह में, **सुत्ते वा**–सोते हुए **जागरमाणे वा**–अथवा जागते हुए, **से**–इस प्रकार, **पुढविं वा**–पृथ्वी को अथवा **भित्तिं वा**–दीवार

को, सिलं वा–शिला को अथवा, लेलुं वा–ठेले को, ससरक्खं वा कायं–सचित्त रज सहित वस्त्रों को, हत्थेण वा–हाथ से अथवा, पाएण वा–पैर से, कट्ठेण वा–लकड़ी से अथवा, किलिंचेण वा–डंडे से, अंगुलियाए वा–अंगुलि से अथवा, सिलागाए वा–लोहे की छड़ से अथवा, सिलागहत्थेण वा–लोहे की छड़ियों के समूह से, ण आलिहिज्जा–सचित्त पृथ्वी पर लिखे नहीं, ण विलिहिज्जा–विशेष लिखे नहीं, ण घट्टिज्जा–एक स्थान से दूसरे स्थान पर डाले नहीं, ण भिंदिज्जा–भेदन न करे, अण्णं–दूसरे से, ण आलिहाविज्जा–लिखावे नहीं, ण विलिहाविज्जा–औरों से विशेष लिखावे नहीं, ण घट्टाविज्जा–एक स्थान से दूसरे स्थान पर गिरावे नहीं, ण भिंदाविज्जा–भेदन न करावे, आलिहंतं वा–लिखने वाला, विलिहंतं वा–विशेष लिखने वाले, घट्टंतं वा–एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाले, भिंदंतं वा–भेदन करने वाले, अण्णं–दूसरों को, ण समणुजाणिज्जा–भला भी नहीं समझे शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन् ! मैं, जावज्जीवाए–जीवन पर्यन्त, तिविहं–तीन करण और, तिविहेणं–तीन योग से अर्थात्, मणेणं–मन से, वायाए–वचन से, काएणं–काया से, ण करेमि–न करूँगा , ण कारवेमि–न कराऊँगा, करतंपि–करते हुए, अण्णं–दूसरों को, ण समणुजाणामि–भला भी नहीं समझूँगा। भंते–हे भगवन् ! मैं, तस्स–उस पाप से अर्थात् सचित्त पृथ्वी जन्य पाप से, पडिक्कमामि–पृथक होता हूँ, णिंदामि–आत्मसाक्षी से निंदा करता हूँ, गरिहामि–गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ, अप्पाणं–ऐसे पापकारी कर्म से अपनी आत्मा को, वोसिरामि–हटाता हूँ।

भावार्थ–इस सूत्र में पृथ्वीकाय की यतना का वर्णन किया गया है। अब आगे के सूत्र में अप्काय की यतना का वर्णन किया जाएगा।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय–विरय–पडिहय–पच्चक्खाय–पावकम्मे दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से उदगं वा, ओसं वा, हिमं वा, महियं वा, करगं वा, हरितणुगं वा, सुद्धोदगं वा, उदउल्लं वा कायं, उदउल्लं वा वत्थं, ससिणिद्धं वा कायं, ससिणिद्धं वा वत्थं, ण आमुसिज्जा, ण संफुसिज्जा, ण आवीलिज्जा, ण पवीलिज्जा, ण अक्खोडिज्जा, ण पक्खोडिज्जा, ण आयाविज्जा, ण पयाविज्जा, अण्णं ण आमुसाविज्जा, ण संफुसाविज्जा, ण आवीलाविज्जा, ण पवीलाविज्जा, ण अक्खोडाविज्जा, ण पक्खोडाविज्जा, ण आयाविज्जा, ण पयाविज्जा, अण्णं आमुसंतं वा, संफुसंतं वा, आवीलंतं वा, पवीलंतं

वा, अक्खोडंतं वा, पक्खोडंतं वा, आयावंतं वा, पयावंतं वा, ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ण करेमि ण कारवेमि करंतं पि अण्णं ण समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥15॥(2)

अन्वयार्थ– 'से भिक्खू वा से जागरमाणे' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है, साधु अथवा साध्वी, **उदगं वा**–जल को, **ओसं वा**–ओस को, **हिमं वा**–बर्फ को, **महियं वा**–धूंअर के पानी को, **करगं वा**–ओले के पानी को, **हरितणुगं वा**–हरियाली पर पड़े हुए जल बिंदुओं को, **सुद्धोदगं वा**–आकाश से गिरे हुए जल को, **उदउल्लं वा कायं**–जल से भीगे हुए शरीर को, **उदउल्लं वा वत्थं**–जल से भीगे हुए वस्त्र को, **ससिणिद्धं वा कायं**–कुछ–कुछ भीगे हुए शरीर को, **ससिणिद्धं वा वत्थं**–कुछ–कुछ भीगे हुए वस्त्र को, **ण आमुसिज्जा**–जरा भी स्पर्श न करें , **ण संफुसिज्जा**–अधिक स्पर्श न करें ,**ण आवीलिज्जा**–एक बार न निचोड़े, **ण पवीलिज्जा**–बार–बार न निचोड़ें, **ण अक्खोडिज्जा**–न झटके, **ण पक्खोडिज्जा**–बार–बार न झटकें, **ण आयाविज्जा**–न सुखावे, **ण पयाविज्जा**–बार–बार न सुखावे, **अण्णं**–दूसरे से, **ण आमुसाविज्जा**–जरा भी स्पर्श न करावे, **ण संफुसाविज्जा**–बार–बार स्पर्श न करावे, **ण आवीलाविज्जा**–न निचोड़वावे, **ण पवीलाविज्जा**–बार–बार न निचोड़वावे, **ण अक्खोडाविज्जा**–झटकावे नहीं , **ण पक्खोडाविज्जा**–बार–बार झटकावे नहीं, **ण आयाविज्जा**–न सुखवावे, **ण पयाविज्जा**–बार–बार न सुखवावे तथा, **आमुसंतं वा**–जरा भी स्पर्श करने वाले, **संफुसंतं वा**–बार–बार स्पर्श करने वाले, **आवीलंतं वा**–निचोड़ने वाले, **पवीलंतं वा**–बार–बार निचोड़ने वाले, **अक्खोडंतं वा**–झटकाने वाले, **पक्खोडंतं वा**–बार–बार झटकाने वाले, **आयावंतं वा**–सुखाने वाले, **पयावंतं वा**–बार–बार सुखाने वाले, **अण्णं**–दूसरे को, **ण समणुजाणिज्जा**–भला नहीं समझे 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक का अर्थ पूर्ववत् है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय–विरय–पडिहय–पच्चक्खाय–पावकम्मे दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से अगणिं वा, इंगालं वा, मुम्मुरं वा, अच्चिं वा, जालं अलायं वा, सुद्धागणिं वा, उक्कं वा, ण उंजिज्जा, ण घट्टिज्जा, ण [illegible] ण उज्जालिज्जा, ण पज्जालिज्जा, ण णिव्वाविज्जा, अण्णं ण

घट्टाविज्जा, ण भिंदाविज्जा, ण उज्जालाविज्जा, ण पज्जालाविज्जा, ण णिव्वाविज्जा, अण्णं उंजंतं वा, घट्टंतं वा, भिंदंतं वा, उज्जालंतं वा, पज्जालंतं वा, निव्वावंतं वा, ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ण करेमि ण कारवेमि करंतं पि अण्णं ण समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥16॥ (3)

अन्वयार्थ– 'से भिक्खू वा से जागरमाणे' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है, साधु अथवा साध्वी, अगणिं वा–अग्नि को, इंगालं वा–अंगारे को, मुम्मुरं वा–चिनगारी, बकरी आदि के मींगणों की अग्नि को, अच्चिं वा–दीपक की शिखा की अग्नि को, जालं वा–अग्नि के साथ मिली हुई ज्वाला को, अलायं वा–जलता हुआ कंडा व काष्ठ की अग्नि को, सुद्धागणिं वा–काष्ठादि रहित शुद्ध अग्नि को, उक्कं वा–उल्कापात रूप अग्नि को, ण उंजिज्जा–ईंधन डालकर न बढ़ावे, ण घट्टिज्जा–संघट्टा न करें, ण भिंदिज्जा–छिन्न–भिन्न न करे, ण उज्जालिज्जा–जरा भी न जलावे, ण पज्जालिज्जा–प्रज्वलित न करे, ण णिव्वाविज्जा–न बुझावे, अण्णं–दूसरे से, ण उंजाविज्जा–ईंधन डालकर न बढ़वावे, ण घट्टाविज्जा–संघट्टा न करवावे, ण भिंदाविज्जा–छिन्न–भिन्न न करवावे, ण उज्जालाविज्जा–न जलवावे, ण पज्जालाविज्जा–प्रज्वलित न करवावे, ण णिव्वाविज्जा–न बुझवावे तथा, उंजंतं वा–ईंधन डालकर बढ़ाने वाले, घट्टंतं वा–संघट्टा करने वाले, भिंदंतं वा–छिन्न–भिन्न करने वाले, उज्जालंतं वा–जलाने वाले, पज्जालंतं वा–प्रज्वलित करने वाले, अण्णं–दूसरे को, ण समणुजाणिज्जा–भला भी न समझे। 'जावज्जीवाए से वोसिरमि' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। अब वायुकाय की यतना के विषय में वर्णन किया गया है –

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय–विरय–पडिहय–पच्चक्खाय–पावकम्मे दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से सिएण वा, विहुयणेण वा, तालियंटेण वा, पत्तेण वा, पत्तभंगेण वा, साहाए वा, साहाभंगेण वा, पिहुणेण वा, पिहुणहत्थेण वा, चेलेण वा, चेलकण्णेण वा, हत्थेण वा, मुहेण वा, अप्पणो वा, कायं वाहिरं वावि पुग्गलं ण फुमिज्जा, ण वीएज्जा, अण्णं ण फुमाविज्जा, ण वीआविज्जा, अण्णं फुमंतं वा, वीअंतं वा, ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए

काएणं ण करेमि ण कारवेमि करंतं पि अण्णं ण समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥17॥ (4)

अन्वयार्थ– 'से भिक्खू वा से जागरमाणे' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है । साधु अथवा साध्वी, **सिएण वा**–चामर से, **विहुयणेण वा**–पंखे से, **तालियंटेण वा**–ताड़ वृक्ष के पंखे से, **पत्तेण वा**–पत्तों से, **पत्तभंगेण वा**–पत्तों के टुकड़ों से **साहाए वा**–शाखा से, **साहाभंगेण वा**–शाखा से टुकड़ों से, **पिहुणेण वा**–मोर के पंखों से, **पिहुणहत्थेण वा**–मोरपिच्छी से, **चेलेण वा**–वस्त्र से, **चेलकण्णेण वा**–कपड़े के पल्ले से, **हत्थेण वा**–हाथ से, **मुहेण वा**–मुख से, **अप्पणो**–अपने, **कायं**–शरीर को, **वा**–अथवा, **बाहिरं वा वि**–बाहरी पुद्गलों को, **ण फुमिज्जा**–फूँक न मारे, **ण वीएज्जा**–पंखे आदि से हवा न करे, **अण्णं**–दूसरे से, **ण फुमाविज्जा**–फूँक न लगवावे, **ण वीआविज्जा**–पंखे आदि से हवा न करावे, **फुमंतं वा**–फूँक देने वाले, **वीअंतं वा**–हवा करने वाले, **अण्णं**–दूसरे को, **ण समणुजाणिज्जा**–भला भी न समझे । 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत है । अब वनस्पतिकाय की यतना का वर्णन किया जाता है ।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय–विरय–पडिहय–पच्चक्खाय–पावकम्मे दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से बीएसु वा, बीयपइट्ठेसु वा, रूढेसु वा, रूढपइट्ठेसु वा, जाएसु वा, जायपइट्ठेसु वा, हरिएसु वा, हरियपइट्ठेसु वा, छिण्णेसु वा, छिण्णपइट्ठेसु वा, सचित्तेसु वा, सचित्त कोलपडिणिस्सिएसु वा, ण गच्छेज्जा, ण चिट्ठेज्जा, ण णिसीइज्जा, ण तुअट्टिज्जा, अण्णं ण गच्छाविज्जा, ण चिट्ठाविज्जा, ण णिसीआविज्जा, ण तुअट्टाविज्जा, अणं गच्छंतं वा, चिट्ठंतं वा, णिसीअंतं वा, तुअट्टंतं वा, ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ण करेमि ण कारवेमि करंतं पि अण्णं ण समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। ॥18॥ (5)

अन्वयार्थ– 'से भिक्खू वा से जागरमाणे' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है, साधु अथवा साध्वी, **बीएसु वा**–बीजों पर, **बीयपइट्ठेसु वा**–बीजों पर रखे हुए शयन आसनादि

पर, रूढेसु वा–बीज उग कर जो अंकुरित हुए हों, उन पर, रुढपइट्ठेसु वा–अंकुरित वनस्पति पर रखे हुए आसनादि पर, जाएसु वा–पत्ते आने की अवस्था वाली वनस्पति पर, जायपइट्ठेसु वा–पत्ते आने की अवस्था वाली वनस्पति पर रखे हुए आसनादि पर, हरिएसु वा– हरी दूब आदि पर, हरियपइट्ठेसु वा–हरी दूब आदि पर रखे हुए आसनादि पर, छिण्णेसुवा– वृक्ष की कटी हुई हरी शाखाओं पर, छिण्णपइट्ठेसु वा–वृक्ष की कटी हुई हरी शाखाओं पर रखे हुए आसानादि पर, सचित्तेसु वा–ऐसी वनस्पति जिस पर अंडा आदि हो, सचित्तकोलपडिणिस्सिएसु वा– घुन लगे हुए काठ पर, ण गच्छेज्जा–न चले, ण चिट्ठेज्जा–खड़ा न होवे, ण णिसीइज्जा–न बैठे, ण तुअट्टिज्जा–न सोवे, अण्णं–दूसरे को, ण गच्छाविज्जा–न चलावे, ण चिट्ठाविज्जा–न खड़ा करे, ण णिसीआविज्जा–न बैठावे, ण तुअट्टाविज्जा–न सुलावे, गच्छंतं वा–चलते हुए, चिट्ठंतं वा–खड़े हुए, निसीअतं वा–बैठते हुए, तुअट्टंतं वा–सोते हुए, अण्णं–दूसरे को, ण समणुजाणिज्जा–भला भी न जाने। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत्। आगे त्रसकाय की यतना का वर्णन किया जाता है –

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय–विरय–पडिहय–पच्चक्खाय–पावकम्मे दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से कीडं वा, पयंगं वा, कुंथुं वा, पिवीलियं वा, हत्थंसि वा, पायंसि वा, बाहुंसि वा, उरुंसि वा, उदरंसि वा, सीसंसि वा, वत्थंसि वा, पडिग्गहंसि वा, कंबलंसि वा, पायपुच्छणंसि वा, रयहरणंसि वा, गोच्छगंसि वा, उंडगंसि वा, दंडगंसि वा, पीढगंसि वा, फलगंसि वा, सेज्जंसि वा, संथारगंसि वा, अण्णयरंसि वा, तहप्पगारे उवगरणजाए तओ संजयामेव पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय एगंतमवणिज्जा णो णं संघायमावज्जेज्जा ॥19॥ (6)

अन्वयार्थ– 'से भिक्खू वा से जागरमाणे' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है, साधु अथवा साध्वी, कीडं वा–कीड़े–मकोड़े को, पयंगं वा–पतंगे को, कुंथुं वा–कुंथुए को, पिवीलियं वा–चींटी को, हत्थंसि वा–हाथ पर, पायंसि वा–पाँव पर, बाहुंसि वा–भुजा पर, उरुंसि वा–जांघ पर, उदरंसि वा–पेट पर, सीसंसि वा–सिर पर, वत्थंसि वा–वस्त्र पर, पडिग्गहंसि वा–पात्र पर कंबलंसि वा–कम्बल पर, पायपुच्छणंसि वा–पैर पोंछने के उपकरण विशेष पर, रयहरणंसि वा– [illegible] पर, गोच्छगंसि वा–[illegible]

पूँजनी पर या पात्रों को पोंछने के वस्त्र पर, **उंडगंसि वा**–स्थण्डिल पात्र पर, **दंडगंसि वा**–दण्डे पर, **पीढगंसि वा**–चौकी पर, **फलगंसि वा**–पाटे पर, **सेज्जंसि वा**–शय्या पर, **संथारगंसि वा**–संथारे पर, **वा**–अथवा, **तहप्पगारे**–इसी प्रकार के, **अण्णयरंसि वा**–किसी दूसरे, **उवगरणजाए**–उपकरण पर पड़े हुए कीड़े आदि जीव को, **तओ**–उस स्थान से अर्थात् हाथ–पैर आदि पर से, **संजयामेव**–यतना पूर्वक, **पडिलेहिय–पडिलेहिय**–बार–बार भली प्रकार से प्रतिलेखना करके, **पमज्जिय पमज्जिय**–बार–बार सम्यक् प्रकार से पूँज कर, **एगंतं**–एकान्त स्थान में , **अवणिज्जा**–रख दे, किन्तु उन जीवों को, **णो णं संघायमावज्जेज्जा**–इस प्रकार इकट्ठा करके न रखें कि जिससे उन्हें पीड़ा हो।

अजयं चरमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥1॥
अजयं चिट्ठमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥2॥
अजयं आसमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥3॥
अजयं सयमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥4॥
अजयं भुंजमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥5॥
अजयं भासमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥6॥

अन्वयार्थ– अजयं–अयतना पूर्वक, **चरमाणो**–चलता हुआ, **चिट्ठमाणो**–खड़ा होता हुआ, **आसमाणो**–बैठता हुआ, **सयमाणो**–सोता हुआ, **भुंजमाणो**–भोजन करता हुआ और, **भासमाणो**–बोलता हुआ व्यक्ति, **पाणभूयाइं**–त्रस की, **हिंसइ**–हिंसा करता है। **अ**–जिससे, **पावयं**–पाप, **कम्मं**–कर्म होता है। **तं**–वह पाप कर्म, **से**–उस प्राणी के लिए **कडुयं**–कटुक, **होइ**–होता है ॥1–6॥

भावार्थ—इन छः गाथाओं में अयतनापूर्वक चलने, खड़ा रहने, बैठने, सोने और का कटु फल बतलाया गया है, जो स्वयं उसी आत्मा को भोगना पड़ता है।

कहं चरे कहं चिट्ठे, कहमासे कहं सए।
कहं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं ण बंधइ ॥7॥

अन्वयार्थ—अब शिष्य प्रश्न करता है—हे भगवन् ! यदि ऐसा है, तो मुनि कहं—कैसे चरे—चले, कहं—कैसे, चिट्ठे—खड़ा रहे, कहं—कैसे, आसे—बैठे, कहं—कैसे, सए—सोवे, कहं—कैसे भुंजंतो—भोजन करता हुआ और कहं—कैसे, भासंतो—बोलता हुआ, पावं—पाप, कम्मं—कर्म, ण—नहीं , बंधइ—बांधता है ॥7॥

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावंकम्मं ण बंधइ ॥8॥

अन्वयार्थ—गुरु उत्तर देते हैं कि जयं—यतनापूर्वक, चरे—चले, जयं—यतनापूर्वक, चिट्ठे—खड़ा रहे, जयं—यतनापूर्वक, आसे—बैठे, जयं—यतनापूर्वक, सए—सोवे, जयं—यतनापूर्वक, भुंजंतो—भोजन करता हुआ और, जयं—यतनापूर्वक, भासंतो—बोलता हुआ, पावं—पाप, कम्मं—कर्म, ण—नहीं , बंधइ—बांधता है।

सव्वभूयप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइं पासओ।
पिहियासवस्स दंतस्स, पावं कम्मं ण बंधइ ॥9॥

अन्वयार्थ—सव्वभूयप्पभूयस्स—संसार के समस्त प्राणियों को अपनी आत्मा के समान समझने वाले, सम्मं—सम्यक् प्रकार से, भूयाइं—सभी जीवों को, पासओ—देखने वाले, पिहियासवस्स—आश्रवों को रोकने वाले और, दंतस्स—इन्द्रियों को दमन करने वाले के, पावं—पाप, कम्मं—कर्म, ण—नहीं, बंधइ—बाँधता है ॥9॥

पढमं णाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।
अणाणी किं काही, किं वा णाही सेयपावगं ॥10॥

अन्वयार्थ—पढमं—पहले, णाणं—ज्ञान है, तओ—उसके पश्चात्, दया—दया है, एवं—इस प्रकार, सव्व संजए—सभी साधु, चिट्ठइ—आचरण करते हैं। अणाणी—ज्ञान से रहित अज्ञानी पुरुष, किं—क्या, काही—कर सकता है और, किंवा—[illegible]

सेयपावगं–पुण्य और पाप को, **णाही**–जान सकता है।

भावार्थ–सबसे पहला स्थान ज्ञान का है और उसके बाद दया अर्थात् क्रिया है। ज्ञानपूर्वक क्रिया से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। अज्ञानी, जिसे साध्य–साधन का भी ज्ञान नहीं है, वह क्या कर सकता है ? वह अपने कल्याण और अकल्याण को भी कैसे समझ सकता है ?

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं।
उभयं पि जाणइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे ॥11॥

अन्वयार्थ–सोच्चा–सुनकर ही, **कल्लाणं**–कल्याण को **जाणइ**–जानता है, **सोच्चा**–सुनकर ही, **पावगं**–पाप को, **जाणइ**–जानता है और, **उभयं पि**–दोनों को भी, **सोच्चा**–सुनकर ही, **जाणइ**–जानता है, अतः **जं**–जो, **सेयं**–आत्मा के लिए हितकारी हो, **तं**–उसका, **समायरे**–आचरण करे ॥11॥

भावार्थ–हिताहित का ज्ञान सुनकर ही होता है। इसलिए इनमें से जो श्रेष्ठ हो, उसी में प्रवृत्ति करनी चाहिए।

जो जीवे वि ण याणेइ, अजीवे वि ण याणेइ।
जीवाजीवे अयाणंतो, कहं सो णाहीइ संजमं ॥12॥

अन्वयार्थ–जो–जो, **जीवे वि**–जीव के स्वरूप को, **ण**–नहीं **याणेइ**–जानता और, **अजीवे वि**–अजीव के स्वरूप को भी, **ण**–नहीं, **याणेइ**–जानता। **जीवाजीवे**–इस प्रकार जीवाजीव के स्वरूप को, **अयाणंतो**–नहीं जानने वाला, **सो**–वह साधक, **संजमं**–संयम को, **कहं**–कैसे, **णाहीइ**–जानेगा अर्थात् नहीं जान सकता ॥12॥

जो जीवे वि वियाणेइ, अजीवे वि वियाणेइ।
जीवाजीवे वियाणंतो, सो हु णाहीइ संजमं ॥13॥

अन्वयार्थ–जो–जो **जीवे वि**–जीव का स्वरूप **वियाणेइ**–जानता है तथा, **अजीवे वि**–अजीव का स्वरूप भी, **वियाणेइ**–जानता है। इस प्रकार, **जीवाजीवे**–जीव और अजीव के स्वरूप को, **वियाणंतो**–जानने वाला, **सो**–वह साधक, **हु**–निश्चय ही, **संजमं**–संयम के स्वरूप को, **णाहीइ**–जान सकेगा।

जया जीवमजीवे य, दो वि एए वियाणइ ।
तया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ ॥14॥

अन्वयार्थ–जया–जब आत्मा, जीवमजीवे–जीव और अजीव, एए–इन दोनों को, वियाणइ–जान लेता है तया–तब, सव्व जीवाण–सभी जीवों की, बहुविहं–बहुत भेदों वाली, गइं–नरक, तिर्यंच आदि नानाविध गति को भी, जाणइ–जान लेता है॥14॥

भावार्थ–इस गाथा में तथा आगे की गाथाओं में ज्ञान प्राप्ति से लेकर मोक्ष प्राप्ति तक का क्रम बतलाया गया है।

जया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ ।
तया पुण्णं च पावं च, बंधं मुक्खं च जाणइ ॥15॥

अन्वयार्थ–जया–जब आत्मा, सव्वजीवाण–सभी जीवों की, बहुविहं–बहुत भेदों वाली, गइं–नरक तिर्यंच आदि नानाविध गति को, जाणइ–जान लेता है, तया–तब, पुण्णं–पुण्य, च–और पावं–पाप को, च–तथा, बंधं–बन्ध, च–और, मुक्खं–मोक्ष को भी, जाणइ–जान लेता है ॥15॥

जया पुण्णं च पावं च, बंधं मुक्खं च जाणइ ।
तया णिव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ॥16॥

अन्वयार्थ–जया–जब, पुण्णं–पुण्य, च–और, पावं–पाप को, च–तथा, बंधं–बन्ध, च–और, मुक्खं–मोक्ष को भी, जाणइ–जान लेता है, तया–तब, जे दिव्वे–जो देव, य–और, जे माणुसे–मनुष्य संबंधी, भोए–काम–भोग हैं, उनकी, णिव्विंदए–असारता को समझ कर उन्हें छोड़ देता है ॥16॥

जया णिव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ।
तया चयइ संजोगं, सब्भिंतर बाहिरं ॥17॥

अन्वयार्थ–जया–जब, जे दिव्वे–जो देव, य–और, जे माणुसे–मनुष्य संबंधी भोए–काम–भोगों की, णिव्विंदए–असारता को समझ कर उन्हें छोड़ देता है, तया–तब, सब्भिंतर बाहिरं–राग–द्वेष कषाय रूप आभ्यंतर और माता–पिता तथा

रूप बाह्य, **संजोगं**–संयोग को, **चयइ**–छोड़ देता है ।

जया चयइ संजोगं, सब्भिंतर बाहिरं ।
तया मुण्डे भवित्ता णं, पव्वइए अणगारियं ॥18॥

अन्वयार्थ–जया–जब, **सब्भिंतर बाहिरं**–आभ्यन्तर और बाह्य, **संजोगं**–संयोग को, **चयइ**–छोड़ देता है, **तया**–तब, **मुण्डे**–द्रव्य और भाव से मुण्डित, **भवित्ताणं**–होकर, **अणगारियं**–अनगार वृत्ति को, **पव्वइए**–ग्रहण करता है ॥18॥

जया मुण्डे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं ।
तया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं ॥19॥

अन्वयार्थ–जया–जब, **मुण्डे**–द्रव्य और भाव से मुण्डित, **भवित्ताणं**–होकर, **अणगारियं**–अनगार वृत्ति, **पव्वइए**–ग्रहण करता है, **तया**–तब, **उक्किट्ठं**–उत्कृष्ट और, **अणुत्तरं**–सर्वश्रेष्ठ, **संवर धम्मं**–संवर धर्म को, **फासे**–प्राप्त करता है ॥19॥

जया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं ।
तया धुणइ कम्मरयं, अबोहि-कलुसंकडं ॥20॥

अन्वयार्थ–जया–जब, **उक्किट्ठं**–उत्कृष्ट और, **अणुत्तरं**–प्रधान, **संवर धम्मं**–संवर धर्म को, **फासे**–प्राप्त करता है । **तया**–तब, **अबोहि-कलुसंकडं**–आत्मा के मिथ्यात्व से उपार्जित किए हुए, **कम्मरयं**–कर्म रूपी रज को, **धुणइ**–झाड़ देता है॥20॥

जया धुणइ कम्मरयं, अबोहि-कलुसंकडं ।
तया सव्वत्तगं णाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ॥21॥

अन्वयार्थ–जया–जब, **अबोहि-कलुसंकडं**–आत्मा के मिथ्यात्व परिणाम द्वारा उपार्जित किए हुए, **कम्मरयं**–कर्म रूपी रज को, **धुणइ**–झाड़ देता है, **तया**–तब, **सव्वत्तगं**–सभी पदार्थों को जानने वाले, **णाणं**–केवल ज्ञान, **च**–और, **दंसणं**–केवल–दर्शन को, **अभिगच्छइ**–प्राप्त कर लेता है ॥21॥

जया सव्वत्तगं णाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ।
तया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ॥22॥

अन्वयार्थ–जया–जब, सव्वत्तगं–सभी पदार्थों को जानने वाले, णाणं–केवल ज्ञान, च–और, दंसणं–केवल दर्शन को, अभिगच्छइ–प्राप्त कर लेता है, तया–तब जिणो–राग–द्वेष का विजेता, केवली–केवल ज्ञानी होकर, लोगं–लोक, च–और अलोगं–अलोक के स्वरूप को भी, जाणइ–जान लेता है ॥22॥

जया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ।
तया जोगे णिरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ॥23॥

अन्वयार्थ –जया–जब, जिणो–राग–द्वेष का विजेता केवली–केवल ज्ञानी हो कर, लोगं–लोक, च–और, अलोगं–अलोक को, जाणइ–जान लेता है, तया–तब आत्मा, जोगे–मन, वचन और काया के योगों का, णिरुंभित्ता–निरोध कर के सेलेसिं–शैलेशीकरण को, पडिवज्जइ–प्राप्त करता है ॥23॥

जया जोगे णिरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ।
तया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ णीरओ ॥24॥

अन्वयार्थ–जया–जब, जोगे–मन, वचन और काया के योगों का णिरुंभित्ता–निरोध कर के, सेलेसिं–शैलेशीकरण पडिवज्जइ–प्राप्त करता है, तया–तब आत्मा, णीरओ–कर्म रूपी रज से रहित होकर और, कम्मं–समस्त कर्मों का खवित्ताणं–क्षय करके, सिद्धिं–मोक्ष में गच्छइ–चला जाता है ॥24॥

जया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ णीरओ ।
तया लोगमत्थयत्थो, सिद्धो हवई सासओ ॥25॥

अन्वयार्थ–जया–जब, णीरओ–कर्म रूपी रज से रहित होकर और कम्मं समस्त कर्मों का, खवित्ताणं–क्षय करके, सिद्धिं–मोक्ष, गच्छइ–चला जाता है, तया तब आत्मा, लोगमत्थयत्थो–लोक के अग्रभाग पर स्थित, सासओ–शाश्वत, सिद्धो सिद्ध, हवइ–हो जाता है ॥25॥

सुहसायगस्स समणस्स, सायाउलगस्स णिगामसाइस्स ।
उच्छोलणा पहोयस्स, दुल्लहा सुगई तारिसगस्स ॥26॥

अन्वयार्थ–सुहसायगस्स–सुख और साता में आसक्त रहने वाले, **सायाउलगस्स**–सुख और साता के लिए व्याकुल रहने वाले, **णिगामसाइस्स**–अत्यंत सोने वाले, **उच्छोलणा पहोयस्स**–शरीर की विभूषा के लिए हाथ–पाँव आदि धोने वाले, **तारिसगस्स समणस्स**–साधु को, **सुगई**–सुगति मिलना, **दुल्लहा**–दुर्लभ है ॥26॥

तवोगुणपहाणस्स, उज्जुमइ खंतिसंजमरयस्स ।
परीसहे जिणंतस्स, सुल्लहा सुगई तारिसगस्स ॥27॥

अन्वयार्थ–तवोगुणपहाणस्स–तप रूपी गुणों से प्रधान, **उज्जुमइ**–सरल बुद्धि वाले, **खंतिसंजमरयस्स**–क्षमा और संयम में रत, **परीसहे**–परीषहों को, **जिणंतस्स**–जीतने वाले, **तारिसगस्स**–साधु को, **सुगई**–सुगति, **सुल्लहा**–सुलभ है ॥27॥

भावार्थ–तप संयम में अनुरक्त, सरल प्रकृति वाले तथा बाइस परीषहों को समभावपूर्वक सहन करने वाले साधक के लिए सुगति प्राप्त होना सरल है ।

पच्छावि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमरभवणाइं ।
जेसिं पिओ तवो संजमो य, खंती य बंभचेरं च ॥28॥

अन्वयार्थ–जेसिं–जिनको, **तवो**–तप, **य**–और, **संजमो**–संयम **य**–तथा **खंती**–क्षमा, **च**–और, **बंभचेरं**–ब्रह्मचर्य, **पिओ**–प्रिय है, ऐसे साधक यदि, **पच्छावि**–अपनी पिछली अवस्था में भी, **पयाया**–चढ़ते परिणामों में संयम स्वीकार करते हैं, तो **ते**–वे, **खिप्पं**–शीघ्र, **अमरभवणाइं**–स्वर्ग अथवा मोक्ष को, **गच्छंति**–प्राप्त हो जाते हैं ॥28॥

भावार्थ–पूर्ण वैराग्य के साथ थोड़े समय तक पालन किया हुआ संयम भी सुगति देने वाला होता है ।

इच्चेयं छज्जीवणियं, सम्मदिट्ठी सया जए ।
दुल्लहं लहित्तु सामण्णं, कम्मुणा ण विराहिज्जासि । त्ति बेमि।

अन्वयार्थ–सया–सदा, **जए**–यतनापूर्वक प्रवृत्ति करने वाला, **सम्मदिट्ठी**–सम्यग्दृष्टि, **दुल्लहं**–दुर्लभ, **सामण्णं**–साधुपने की, **लहित्तु**–प्राप्त करके, **इच्चेयं**–पूर्वोक्त स्वरूप वाले, **छज्जीवणियं**–छः जीवनिकाय की, **कम्मुणा**–मन, वचना, काया से, **ण विराहिज्जासि**–विराधना न करे ॥29॥ **त्तिबेमि**– श्री सुधर्मास्वामी, जम्बूस्वामी से कहते हैं कि जैसा मैंने भगवान महावीर स्वामी से सुना है, वैसा ही कहा है ।

1.आठ कर्म का थोकड़ा

श्री भगवती सूत्र शतक 7 उद्देशक 6 तथा शतक 8, उद्देशक 9 में कर्मों की प्रकृतिबंध के 85 कारण बताये और श्री पन्नवणा सूत्र पद 23, उद्देशक 1 में कर्म-भोग के 93 कारण बताये हैं, वे इस प्रकार हैं-

कर्मों के नाम

1. ज्ञानावरणीय, 2. दर्शनावरणीय, 3. वेदनीय, 4. मोहनीय, 5. आयु, 6. नाम, 7, गोत्र और 8. अंतराय।

परिभाषा

1. वस्तु के विशेष धर्म को जानना **'ज्ञान'** कहलाता है और जिसके द्वारा ज्ञान ढ़ंका जाय उसे **'ज्ञानावरणीय' कर्म** कहते हैं। जैसे बादलों से सूर्य ढंक जाता है।
2. वस्तु के सामान्य धर्म को जानना **'दर्शन'** कहलाता है, उस दर्शन को आच्छादित करने वाले कर्म को **'दर्शनावरणीय कर्म'** कहते हैं। जैसे द्वारपाल के रोक देने पर राजा के दर्शन नहीं हो पाते।
3. जिस कर्म के द्वारा साता (सुख) और असाता (दुःख) का वेदन (अनुभव) हो, उसे **'वेदनीय कर्म '** कहते हैं, जैसे शहद लिपटी तलवार को चाटने से सुख और जीभ कटने से दुःख होता है।
4. जिससे आत्मा मोहित (सत् और असत् के ज्ञान से शून्य) हो जाय, उसे **'मोहनीय कर्म'** कहते हैं। जैसे मदिरा पीने से मनुष्य बे-भान हो जाता है।
5. जिस कर्म के उदय से जीव चार गतियों में रुका रहे, उसे **'आयु कर्म'** कहते हैं। जैसे बेड़ी में बंधने से अपराधी रुक जाता है, पराधीन हो जाता है।
6. जिस कर्म से आत्मा गति आदि नाना पर्यायों का अनुभव करे (शरीर आादि वने या जो जीव के अमूर्तत्व गुण को प्रकट न होने दे) उसे **'नाम कर्म'** कहते हैं। जैसे चित्रकार अनेक प्रकार के चित्र बनाता है।
7. जिस कर्म के उदय से जीव उच्च-नीच कुलों में उत्पन्न हो, उसे **'गोत्र कर्म'** कहते हैं। जैसे कुम्भकार छोटे-वड़े बर्तन बनाता है।

8. जिस कर्म से दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य (शक्ति) में विघ्न उत्पन्न हो, उसे **'अन्तराय कर्म'** कहते हैं। जैसे राजा की आज्ञा होने पर भी भंडारी दानप्राप्ति में बाधक होता है।

8. कर्मों की 148 प्रकृतियाँ

ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 9, वेदनीय की 2, मोहनीय की 28, आयु कर्म की 4, नामकर्म की 93 (103) गोत्रकर्म की 2, अन्तराय की 5 प्रकृतियां हैं।

बन्ध के प्रकार

बन्ध-मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के निमित्त से आत्म-प्रदेशों में हलचल होती है, तब जिस क्षेत्र में आत्म-प्रदेश हैं, उसी क्षेत्र में रहे हुए अन्तानन्त कर्मयोग्य पुद्गलजीव के साथ बन्ध को प्राप्त होते हैं। जीव और कर्म का यह बन्ध ठीक वैसा ही होता है, जैसा दूध और पानी का,अग्नि और लोहपिण्ड का। बन्ध के चार भेद हैं- 1. प्रकृति बन्ध, 2. स्थिति बन्ध, 3. अनुभाग बन्ध और 4. प्रदेश बन्ध।

1. प्रकृति बन्ध- जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म-पुद्गलों में भिन्न-भिन्न स्वभावों का होना।

2. स्थिति बन्ध- जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म-पुद्गलों में जीव के साथ लगे रहने की काल-मर्यादा।

3. अनुभाग बन्ध- इसे 'अनुभाग बन्ध' 'रस बन्ध' भी कहते हैं। जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए 'कर्म पुद्गलों' में फल देने की न्यूनाधिक शक्ति।

4. प्रदेश बन्ध- जीव के साथ न्यूनाधिक परमाणु वाले कर्म-स्कन्धों का सम्बन्ध होना।

चारों बन्धों का स्वरूप समझाने के लिए मोदक (लड्डू) का दृष्टान्त दिया जाता है-

जैसे सोंठ, पीपर, कालीमिर्च आदि से बनाया हुआ लड्डू वायुनाशक होता है। पित्तनाशक और कफनाशक पदार्थों से बनाया हुआ मोदक पित्त और कफनाशक होता है। इसी प्रकार आत्मा द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म-पुद्गलों में से किन्हीं में ज्ञान गुण को

आच्छादन करने की शक्ति होती है, किन्हीं में दर्शन गुण, किन्हीं में आत्मा के आनन्द गुण और किन्हीं में अनन्त शक्ति को घात करने की शक्ति होती है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न कर्म-पुद्गलों में भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रकृतियों का बन्ध होना 'प्रकृति बन्ध' कहलाता है।

कोई मोदक एक सप्ताह, कोई एक पक्ष, कोई एक मास तक प्रभावशाली रहता है, इसके बाद ये विकृत हो जाते हैं। मोदकों की काल-मर्यादा के समान कर्मों की भी काल-मर्यादा होती है। इसी को 'स्थिति बन्ध' कहते हैं। स्थिति पूर्ण होने पर कर्म आत्मा से पृथक् हो जाते हैं।

कोई मोदक रस में अधिक मधुर होते हैं, तो कोई कम। कोई रस में अधिक कटु होते हैं, तो कोई कम। इस प्रकार मोदकों में रसों की न्यूनाधिकता होती है, उसी प्रकार कुछ कर्म-पुद्गलों में अशुभ या शुभ रस अधिक और कुछ में कम होता है। इसी प्रकार कर्मों में तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम और मन्द, मन्दतर, मन्दतम शुभाशुभ रसों का बन्ध होना-'रस बन्ध' है।

कोई मोदक परिणाम में 20 ग्राम का, कोई 50 ग्राम का और कोई 100 ग्राम का होता है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न कर्म-पुद्गलों में न्यूनाधिक प्रदेश होना।

जीव संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेशों से बने हुए कार्मण स्कन्ध को ग्रहण नहीं करता, परन्तु अनंतानन्त प्रदेश वाले स्कन्ध ग्रहण करता है।

प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध तो योग के निमित्त से होते हैं और स्थिति बन्ध व अनुभाग बन्ध कषाय के निमित्त से होते हैं।

कर्म बन्ध के कारण और फल

1. ज्ञानावरणीय कर्म-छह प्रकार से बंधता है। यथा-

1.णाणपडिणीयनाए- ज्ञान और ज्ञानी की प्रत्यनीकता (विरोध) करने से 2. **णाणणिण्हवणयाए-** ज्ञान एवं ज्ञानदाता का अपलाप करने से। 3. **णाणंतराएणं-** ज्ञान प्राप्त करने वाले को अन्तराय डालने (बाधक बनने) से। 4. **णाणप्पओसेणं-** ज्ञान व ज्ञानी से द्वेष करने से, ज्ञान व ज्ञानी के दोष निकालने से। 5. **णाणच्चासयणाए-** ज्ञान व ज्ञानी की आशातना करने से 6, **णाणविसंवायणाजोगेणं-** ज्ञानी से विसंवाद (वितण्डावाद) करने से।

इस कर्म का फल दस प्रकार का है- 1. श्रोतेन्द्रिय का आवरण, 2. श्रोतेन्द्रिय से होने वाले विज्ञान का आवरण, 3. चक्षुइन्द्रिय का आवरण, 4. चक्षुइन्द्रिय से होने वाले विज्ञान का आवरण, 5. घ्राणेन्द्रिय का आवरण, 6. घ्राणेन्द्रिय से होने वाले विज्ञान का आवरण, 7. रसना इन्द्रिय का आवरण, 8. रसना इन्द्रिय से होने वाले विज्ञान का आवरण, 9. स्पर्शनेन्द्रिय का आवरण और 10. स्पर्श इन्द्रिय से होने वाले विज्ञान का आवरण।

(2) दर्शनावरणीय कर्म- छः प्रकार से बन्धता है यथा-

1. दर्शन और दर्शनी की प्रत्यनीकता (विरोध) करने से। 2. दर्शन एवं दर्शनी का अपलाप (लोप करने-छुपाने) करने से। 3. दर्शन प्राप्त करने वाले को अन्तराय डालने (वाधक वनने) से 4. दर्शन व दर्शनी से द्वेष करने से, 5. दर्शन व दर्शनी की आशातना करने से और 6. दर्शनी से विसंवाद (वितण्डावाद) करने से ?

इस कर्म का फल नौ प्रकार का है- 1. निद्रा, 2. निद्रानिद्रा, 3. प्रचला, 4.प्रचला- प्रचला, 5. स्त्यनागृद्धि, 6. चक्षुदर्शनावरण, 7. अचक्षुदर्शनावरण, 8.अवधितदर्शनावरण और 9. केवलदर्शनावरण।

(3) वेदनीय कर्म-22 प्रकार से बंधता है एवं 16 प्रकार से भोगा जाता है जिसके 2 भेद हैं- **1. सातावेदनीय कर्म, 2. असातावेदनीय कर्म।**

सातावेदनीय कर्म दस प्रकार से बंधता है।

1. पाणाणुकंपयाए- वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरिन्द्रिय जीवों पर अनुकम्पा (दया) करने से, **2.भूयाणुकंपयाए-** वनस्पतिकाय के जीवों की अनुकम्पा करने से **3. जीवाणुकंपयाए-**पंचेन्द्रिय जीवों की अनुकम्पा करने से, **4. सत्ताणुकंपयाए-** पृथ्वीकायादि जीवों की अनुकम्पा करने से। (उपरोक्त प्राणों, भूतों, जीवों और सत्वों को) 5. दुःख नहीं देने से, 6. शोक उत्पन्न नहीं करने से 7. नहीं झुराने, पीड़ित नहीं करने से, 8. आंसू नहीं गिराने से, 9. नहीं पीटने से और 10. परिताप (दुःख) उत्पन्न नहीं करने से।

इस कर्म का फल आठ प्रकार का है- 1. मनोज्ञ शब्द, 2. मनोज्ञ रूप, 3.मनोज्ञ गंध, 4. मनोज्ञ रस, 5. मनोज्ञ स्पर्श, 6. इच्छित सुख, 7. अच्छे वचन और 8.शारीरिक सुख का प्राप्त होना।

असातावेदनीय कर्म- बारह प्रकार से बंधता है- 1. प्राण, भूत, जीव और सत्व को दुःख देने से 2. शोक कराने से 3. झुराने से 4. आंसू गिराने से 5. मारपीट करने से 6. परिताप उत्पन्न करने से तथा 7. प्राण, भूत, जीव, सत्त्व को बहुत

8.बहुत शोक कराने से, 9. बहुत झुराने से, 10. बहुत आंसू गिराने से 11. बहुत मारपीट करने से तथा 12. बहुत परिताप उत्पन्न करने से।

इसका फल आठ प्रकार का है- 1. अमनोज्ञ शब्द, 2. अमनोज्ञ रूप, 3.अमनोज्ञ गंध, 4. अमनोज्ञ रस, 5. अमनोज्ञ स्पर्श, 6. मन का दुःख, 7. वचन का दुःख, 8. काया का दुःख।

(4) मोहनीय कार्य- छह प्रकार से बंधता है 1. तीव्र क्रोध करने से 2. तीव्र मान करने से 3. तीव्र माया करने से 4. तीव्र लोभ करने से 5. तीव्र दर्शन मोहनीय से और 6. तीव्र चारित्र मोहनीय से।

यह कर्म अट्ठाईस प्रकार से भोगा जाता है।

इसके मुख्य दो भेद हैं- 1. दर्शन मोहनीय और 2. चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय के तीन भेद हैं- 1. मिथ्यात्व मोहनीय, 2. मिश्र मोहनीय, 3. सम्यक्त्व मोहनीय। चारित्र मोहनीय के भी दो भेद हैं- कषाय मोहनीय और नोकषाय मोहनीय। कषाय मोहनीय के सोलह भेद हैं- अनन्तानुबन्धी- 1. क्रोध, 2. मान, 3. माया और 4. लोभ। अप्रत्याख्यानी, 5. क्रोध, 6. मान, 7. माया और 8. लोभ। प्रत्याख्यानावरण-9.क्रोध, 10. मान 11. माया और 12. लोभ। संज्वलन-13. क्रोध, 14. मान, 15.माया और 16. लोभ।

नोकषाय के नौ भेद हैं- 1. हास्य, 2. रति, 3. अरति, 4. भय, 5. शोक, 6.जुगुप्सा, 7. स्त्रीवेद, 8. पुरुषवेद और 9. नपुंसक वेद- ये सब मिलाकर अट्ठाईस भेद हुए।

1. अनन्तानुबन्धी क्रोध- जैसे पत्थर पर दरार पड़ने से वह मिट नहीं सकती अथवा पर्वत के फटने से जो दरार होती है, उसका मिलना कठिन है, उसी प्रकार जो क्रोध शांत न हो वह अनन्तानुबंधी क्रोध है। **मान-** जैसे पत्थर का खम्भा नमता नहीं, वैसे ही जो मान दूर न हो, उसे अनन्तानुबंधी मान कहते हैं। **माया-** जैसे बिल्कुल टेढ़ी-मेढ़ी बांस की जड़ का टेढ़ापन मिट नहीं सकता, उसी प्रकार जो माया अमिट हो, उसे अनन्तानुबंधी माया कहते हैं। लोभ- जैसे किरमिची रंग का छूटना दुष्कर है, उसी प्रकार जो लोभ छूट न सके, उसे अनन्तानुबंधी लोभ कहते हैं।

इस चौकड़ी वाला नरक गति में उत्पन्न होता है। स्थिति यावज्जीवन की है और सम्यक्त्व का घात करता है।

2. अप्रत्याख्यानी क्रोध- पानी सूखने से तालाब में जो दरार पड़ जाती है, वह

आसानी से न [illegible] मिटती है, इस प्रकार के क्रोध, [illegible]
उसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध कहते हैं। मान- हड्डी के खम्भे की तरह जो बड़ी मुश्किल से झुकता है, उसे अप्रत्याख्यानावरण मान है। माया- मेंढे के सींग की तरह जो बड़ी मुश्किल से सीधा हो, उसे अप्रत्याख्यानावरण माया कहते हैं। लोभ- गाड़ी के ओंगन (कीचड़) की तरह अति कष्ट से छूटे, उसे अप्रत्याख्यानावरण लोभ है।

इस चौकड़ी से तिर्यंच गति होती है। इसकी स्थिति बारह महीने की है। यह श्रावक व्रत का घात करती है।

3. **प्रत्याख्यानावरण क्रोध**- जैसे रेत में खिंची हुई लकीर बहुत काल तक नहीं रहती, इसी प्रकार जो क्रोध बहुत काल तक न ठहरे, उसे प्रत्याख्यानावरण क्रोध कहते हैं। **मान**- बेंत के खम्भे की तरह जिस मान को झुकाने के लिए बहुत अधिक श्रम न करना पड़े, उसे प्रत्याख्यानावरण मान कहते हैं। **माया**- चलता हुआ बैल पेशाब करता है तो टेढ़ी लकीरें हो जाती हैं, उनका मिटना अति कष्टसाध्य नहीं होता, उसी प्रकार जिस माया का मिटना कठिन न हो, उसे प्रत्याख्यानावरण माया कहते हैं। **लोभ**- दीपक के काजल के समान जो लोभ थोड़ी कठिनाई से छूटे, उसे प्रत्याख्यानावरण लोभ कहते हैं। इससे मनुष्य गति का बंध होता है। स्थिति 4 महीने की है। ये सकल संयम का घात करती है।

4. **संज्वलन- क्रोध**- पानी में खींची हुई लकीर के समान शीघ्र ही शांत हो जाता है, उसे संज्वलन क्रोध कहते हैं। **मान**- तिनके के खम्भे के समान शीघ्र ही नम जाय, उसे संज्वलन मान कहते हैं। **माया**- बांस का छिलका जैसे सरलता से सीधा किया जा सकता है, उसी प्रकार माया बिना विशेष श्रम के दूर हो जाय, उसे संज्वलन माया कहते हैं। **लोभ**-हल्दी के रंग के समान जो सहज ही छूट जाय, उसे संज्वलन लोभ कहते हैं।

इस चौकड़ी से देवगति का बन्ध होता है। क्रोध की स्थिति दो मास की, मान की एक माह की, माया की पन्द्रह दिन की और लोभ की अन्तर्मुहूर्त की है। यह यथाख्यात चारित्र का घात करती है (यह कषाय का सामान्य लक्षण है।)

(5) आयुकर्म- सोलह प्रकार से बंधता है और चार प्रकार से भी

नरकायु चार प्रकार से बंधता है-

1. महाआरम्भ करने से, 2. महापरिग्रह करने से
3. मद्य-मांस का सेवन करने से, 4. पंचेन्द्रिय जीवों के

तिर्यंच आयुष्य चार प्रकार से बंधता है।

1. माया करने से, 2. गूढ़ माया करने से,

3. असत्य बोलने से, 4. न्यूनाधिक नापने-तोलने से।

मनुष्य का आयुष्य चार प्रकार से बंधता है-

1. प्रकृति की भद्रता से, 2. प्रकृति की विनीतता से,

3. दयाभाव रखने से और, 4. मद-मत्सर भावरहित होने से।

देवता का आयुष्य चार प्रकार से बंधता है-

1. सराग संयम पालने से, 2. देश संयम पालने से,

3. बाल तपस्या करने से और, 4. अकाम निर्जरा करने से।

आयुकर्म चार प्रकार से भोगा जाता है-

1. नरकायु, 2. तिर्यंचायु, 3. मनुष्यायु और 4. देवायु।

(6) नामकर्म- आठ प्रकार से बंधता है और 28 प्रकार से भोगा जाता है। यह दो प्रकार का है-

1. शुभ नामकर्म और 2. अशुभ नामकर्म।

शुभ नामकर्म चार प्रकार से बंधता है-

1- काया की सरलता, 2- वचन की सरलता।

3- भावों की सरलता और 4- विसंवाद रहितता से,

यह चौदह प्रकार से भोगा जाता है-

1. इष्ट शब्द, 2. इष्ट रूप, 3. इष्ट गंध, 4. इष्ट रस, 5. इष्ट स्पर्श, 6. इष्ट गति, 7.इष्ट स्थिति, 8. इष्ट लावण्य, 9. इष्ट यशःकीर्ति, 10. इष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार-पराक्रम, 11. इष्ट स्वर, 12. कान्त स्वर, 13. प्रिय स्वर और 14. मनोज्ञ स्वर।

अशुभ नामकर्म चार प्रकार से बंधता है-

1- काया की वक्रता (बांकापन) 2- वचन की वक्रता,

3- भावों की वक्रता और 4- विसंवाद योगयुक्तता से।

ये चौदह प्रकार से भोगा जाता है-

1. अनिष्ट शब्द, 2. अनिष्ट रूप, 3. अनिष्ट गंध, 4. अनिष्ट रस, 5. अनिष्ट स्पर्श, 6. अनिष्ट गति, 7. अनिष्ट स्थिति, 8. अनिष्ट लावण्य, 9. अनिष्ट यक्षः कीर्ति, 10.

10.अनिष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम, 11. हीन स्वर, 12. दीन स्वर, 13. अनिष्ट स्वर और 14. अमनोज्ञ स्वर से।

(7) **गोत्रकर्म-** सोलह प्रकार से बंधता है और सोलह प्रकार से भोगा जाता है। इसके दो भेद हैं-

1. उच्च गोत्र और 2- नीच गोत्र।

1- उच्च गोत्र- आठ प्रकार से बंधता है और आठ प्रकार से भोगा जाता है।

1. जाति 2. कुल 3.बल 4.रूप 5. तप 6. श्रुत 7. लाभ, 8. ऐश्वर्य। इनका मद (घमण्ड) न करने से उच्च गोत्र बंधता है तथा पूर्वोक्त आठ का मद न करने से जाति, कुल आदि आठ बोल श्रेष्ठ (उत्तम) रूप से भोगा जाता है।

2- नीच गोत्र- आठ प्रकार से बंधता है और आठ प्रकार से भोगा जाता है। 1.दान, 2. लाभ, 3. भोग, 4. उपभोग 5. वीर्य (शक्ति) में अन्तराय (बाधा) डालने से अन्तरायकर्म बंधता है और इन पांचों की प्राप्ति नहीं होने पर भोगा जाता है। अर्थात् प्रयत्न करने पर भी दान, लाभ आदि की प्राप्ति नहीं होती।

आठ कर्म की स्थिति और आबाधाकाल *

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय की ज. स्थिति अन्तर्मुहूर्त उ. 30 क्रोडाक्रोडी सागरोपम। अबाधाकाल उ. 3000 वर्ष का। सातावेदनीय की ज. स्थिति 2. समय की (इरियावहिया क्रिया की अपेक्षा) तथा 12 मुहूर्त (साम्परायिक की अपेक्षा) उ. 15. क्रोडाक्रोडी सागरोपम की। अबाधाकाल डेढ हजार वर्ष का। असातावेदनीय की ज. स्थिति 1 सागरोपम के 7 भाग में से तीन भाग और पल्योपम का असं., भाग कम उ. 30 क्रोडाक्रोडी सागरोपम की। अबाधाकाल 3000 वर्ष का। मोहनीय की ज. स्थिति अन्तर्मुहूर्त उ. 70 क्रोडाक्रोडी सागरोपम। अबाधाकाल उ. 7000 वर्ष का। आयु कर्म नारकी तथा देवों की स्थिति ज. अंतर्मुहूर्त अधिक 10 हजार वर्ष की, उत्कृष्ट 1/3 करोड़ अधिक 3 पल्योपम की है। अबाधाकाल नहीं। नाम और गोत्र की ज. स्थिति आठ मुहूर्त की उ. 20 क्रोडाक्रोडी सागरोपम की और अबाधाकाल उ. 2000 वर्ष का है। सभी कर्म का ज. अबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त का है।

---

* कर्मबन्ध होने के प्रथम समय से लेकर जब तक उस कर्म का उदय या उदीरणा नहीं होती, परन्तु आत्मा में सत्तारूप से स्थिर रहता है के को अबाधाकाल कहते हैं।

2. श्रावकजी के 21 गुण

जिनेश्वर भगवंत के प्रियधर्मी –दृढ़धर्मी उपासक में नीचे लिखे 21 गुण होते हैं :-

1. श्रावकजी नव तत्व और पच्चीस क्रिया के जानकार होवें ।
2. श्रावकजी धर्म आराधना में देव मनुष्य तिर्यंच किसी की सहायता की इच्छा नहीं करें।
3. श्रावकजी धर्म पर दृढ़ रहें। यदि कोई धर्म से डिगाना चाहे, तो डिगे नहीं।
4. श्रावकजी श्री जिन धर्म में शंका नहीं करें, परदर्शन की इच्छा नहीं करें और करनी के फल में सन्देह नहीं लावें।
5. श्रावकजी सूत्र और अर्थ दोनों को प्राप्त करने वाले, ग्रहण करने व ाले, पूछ कर निश्चित करने वाले और रहस्य ज्ञान प्राप्त करने वाले होवें।
6. श्रावकजी की धर्मरुचि इतनी गहरी हो कि जिसका प्रभाव, रक्त और मांस पर ही नहीं, हड्डियों और मज्जा तक में व्याप्त हो जाए।
7. श्रावकजी निर्ग्रंथ–प्रवचन ही सार है, अर्थ है और परमार्थ है, शेष सभी बातें, सभी वस्तुएं और सभी संयोग अनर्थ हैं, ऐसी दृढ़ श्रद्धा रखें और धर्म–बन्धुओं में चर्चा करें।
8. श्रावकजी कूड़ कपट, ठगाई, अन्याय, अनीति एवं अनाचार से दूर रह कर अपना जीवन एवं आजीविका को न्याय, नीति, सदाचार और धर्म–साधना से निर्मल एवं स्वच्छ रखें।
9. श्रावकजी दान के लिए अपने घर के द्वार खुले रखें।
10. श्रावकजी प्रति मास दोनों पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या, इस प्रकार छह पोषध करें।
11. श्रावकजी के सदाचार की प्रतिष्ठा इतनी व्याप्त हो कि यदि वे धन से भरे हुए भंडारों और महिलाओं के निवास – अंतःपुर (राजाओं के रनिवास) में भी चले जाएं तो उन पर किसी प्रकार की शंका नहीं हो, उनका विश्वास हो।
12. श्रावकजी अपने व्रत नियमों का निर्दोष रीति से पालन करें।
13. श्रावकजी श्रमण – निर्ग्रंथों को भक्तिपूर्वक निर्दोष आहारादि का दान करें।
14. श्रावकजी धर्म का प्रचार करें। वक्तव्य, लेखन, भाषण आदि से धर्म की वृद्धि करें।
15. श्रावकजी अल्प इच्छा वाले होवें। लोभ को वश में रखें।
16. श्रावकजी अल्प आरम्भ वाले हों।

17. श्रावकजी प्रतिदिन तीन मनोरथ का चिन्तन करें एवं चौदह नियमों को धारण करें।

18. श्रावकजी गुणवान साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका की प्रशंसा करे।

19. श्रावकजी उभयकाल प्रतिक्रमण करें।

20. श्रावकजी साधर्मी भाई–बहिनों की सहायता करें।

21. श्रावकजी नित्य सामायिक करें, धर्मोपदेश सुनें।

(भगवती सूत्र श. 2 उ.5.)

3. ज्ञान घटने के बोल

(1) आलस्य करें तो ज्ञान घटे।

(2) निद्रा अधिक लेवें तो ज्ञान घटे।

(3) क्लेश करें तो ज्ञान घटे।

(4) शोक करें तो ज्ञान घटे।

(5) चिन्ता अधिक करें तो ज्ञान घटे।

(6) शरीर में रोग अधिक रहे तो ज्ञान घटे।

(7) कुटुम्ब परिवार के मोह में डूबा रहे तो ज्ञान घटे।

4. ज्ञान बढ़ने के बोल

(1) उद्यम करें तो ज्ञान बढ़े।

(2) निद्रा तजे तो ज्ञान बढ़े।

(3) ऊनोदरी तप करें तो ज्ञान बढ़े।

(4) अल्प बोलें तो ज्ञान बढ़े।

(5) पंडित पुरुषों की संगति करें तो ज्ञान बढ़े।

(6) विनय करें तो ज्ञान बढ़े।

(7) माया कपट रहित तप करें तो ज्ञान बढ़े।

(8) संसार असार जानें तो ज्ञान बढ़े।

(9) सीखे हुए ज्ञान को बारम्बार चितारे तों ज्ञान बढ़े।

(10) ज्ञानवंत के पास ज्ञान सीखें तो ज्ञान बढ़े।

(11) पाँचों इन्द्रियों के विषयों को त्यागें तो ज्ञान बढ़े।



1. भगवान् मल्लिनाथ

जन्म स्थान : मिथिला

पिता : कुंभराजा

माता : प्रभावती

जन्मतिथि : मार्गशीर्ष शुक्ल 11

दिक्षातिथि : मार्गशीर्ष शुक्ल 11

केवलज्ञान : मार्गशीर्ष शुक्ल 11

शिष्यसम्पदा : चालीस हजार श्रमण : पचपन हजार श्रमणी

चिन्ह : कलश

निर्वाणतिथि : मार्ग शीर्ष शुक्ल 12

जैन धर्म का मूल सिद्धान्त है, आत्मा की अनन्तशक्तियों में विश्वास करना और उन्हें विकसित करने का प्रयत्न करते रहना। चाहे कोई स्त्री हो, या पुरुष, आर्य हो या अनार्य, उच्च वर्ण का हो, या निम्नवर्ण का, जो साधना करेगा, वह निश्चय ही सिद्धि पाएगा और आत्मा की अनन्त विभूतियों को प्राप्त करेगा, इस सिद्धान्त का साक्षात् उदाहरण है, उन्नीसवें तीर्थंकर भगवती मल्ली ! स्त्री रूप में जन्म् लेकर भी वे तीर्थंकर बने और अगणित प्राणियों को धर्म का प्रतिबोध दिया।

प्रभु मल्ली–स्त्री क्यों हुए ? इसका उत्तर जैन धर्म का अटल कर्म सिद्धान्त देता है। उनके विगत जीवन से ही तीर्थंकरत्व और स्त्रीत्व– इन दोनों प्रश्नों का उत्तर मिलता है।

अमृत में जहर (तप में कपट)

अपर महाविदेह की वीतशोका नगरी में एक 'बल' नाम का धर्मात्मा राजा हुआ। आकृति से वह मानव था, किंतु गुणों में वह देवता ही था। बड़ा सरल, विनम्र, संयमी और दयालु बल राजा के एक पुत्र था –राजा ने उसका नाम 'महाबल' रखा।

महाबल के छह राजकुमार घनिष्ठ मित्र थे। छहों मित्रों के नाम थे – अचल, धरण, पूरण, वसु, वैश्रवण और अभिचन्द्र। बचपन से ही वे गुरुकुल में साथ में खेले–कूदे, साथ रहते, साथ खाते–पीते।''

महाबल राजा बना, उधर छहों मित्र भी क्रमशः अपने–अपने राज्य के कर्णधार बने, किंतु फिर भी मित्रता का सूत्र ज्यों–का–त्यों जुड़ा रहा। प्रौढ़ अवस्था आने पर महाबल को वैराग्य हुआ – संसार त्यागकर दीक्षा लेने का विचार किया। छहों मित्रों को उसने

अपना विचार बताया, तो वे बोल पड़े – " जिस पथ पर एक चलेगा, उस पर सब चलेंगे, एक के लिए सब और सबके लिए एक, यही हमारी मित्रता का अटल सिद्धान्त है। संसार के आनन्द – उपभोग में हम साथ रहे हैं तो आत्म कल्याण करने में भी साथ ही रहेंगे।"

इस प्रकार सबने दृढ़ निश्चय किया और महाबल तथा छहों मित्र धर्मघोष नाम के मुनि के पास दीक्षित हो गए। दीक्षा लेने के बाद सातों मुनियों ने विचार किया – " हम अब तक साथ–साथ रहते आए हैं, प्रत्येक कार्य सातों मिलकर करते रहे हैं तो अब धर्म साधना, तपश्चरण आदि भी एक समान और एक साथ करना चाहिए।" सबने इस निश्चय के अनुसार तपस्या प्रारम्भ कर दी।

महाबल मुनि के मन में विचार उठा – " सभी मित्र यदि समान तप करेंगे तो फिर मेरी उसमें विशेषता क्या रहेगी ? मुझे कुछ विशेष तप करना चाहिए, किंतु कैसे ? सबने एक समान तप करने का निश्चय किया है यदि मैं अधिक तप का पच्चखाण करूँगा तो वे भी करेंगे.... ।" इस प्रकार मुनि महाबल के मन में कुछ 'विशेषता' की भावना जाग गई। मित्रता समानता की भूमि पर चलती है, विशेषता की भावना आई कि मित्रता में धोखा और कपट के गड्ढे पड़ जाते हैं।

सातों मुनियों ने उपवास किया,छह तो पारणा की भिक्षा लेने गए, महाबल मुनि चुपचाप बैठे रहे। मुनि आए, उन्हें पारणा करने के लिए निमन्त्रण किया तो बोले– "आज मैं पारणा नहीं करूँगा।" साथी मुनि चकित होकर बोले– "आप पहले हमें कहते, हम भी नहीं करते.... हमारा तो संकल्प है साथ–साथ तप करना।

मुनि महाबल उन्हें मीठी भाषा में समझाते– "नहीं, तुम पारणा करो, मेरे लिये मत रुको, भिक्षा ले आए हो तो इसका उपयोग करना ही पड़ेगा।"

साथी मुनि मन–मसोस कर रह जाते, आखिर बड़े के नाते उनका आदेश भी शिरोधार्य करना पड़ता।

मुनि महाबल अपनी ज्येष्ठता और चतुरता के कारण इस प्रकार छिपाकर - कपट करके तपःसाधना की प्रतिस्पर्धा में मित्रों से आगे बढ़ते चले गए। किंतु कपट आखिर पाप है,चाहे वह तप के लिए किया जाय अथवा भोग के लिए! चाहे मुनि हो, या गृहस्थ। कपट और वह भी मित्रों के साथ, कितना अनर्थकारी होता है, मुनि महाबल जानते थे, पर तप के द्वारा विशिष्टता प्राप्त करने के लोभ में उनकी भावना, उनका ज्ञान, गलत दिशा में मुड़ गया। अमृत से भरे कलश में जहर मिल गया।

मुनि महाबल के बेला करने पर साथी मुनि भी बेला कर लेते, तो महाबल मुनि उन्हें कैसे भी फुसलाकर पारणा करवा देते और स्वयं तेला कर लेते। इस प्रकार तपस्या में प्रतिस्पर्धा के साथ आगे बढ़ते। कठोर से कठोर और दीर्घकालीन तपस्या, प्रतिमा और अभिग्रह आदि करके इस जन्म् में महाबल मुनि ने तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन भी किया तो तप में मायाचार के कारण स्त्री वेद का बन्धन भी। अन्तिम समय में अनशन आदि के द्वारा समाधि मरण प्राप्त कर सातों मुनि वैजयंत नामक अनुत्तर विमान– स्वर्ग में गए!



मिथिला नगरी में उन दिनों इक्ष्वाकुवंशी राजा कुंभ का राज्य था। महारानी प्रभावती रूप–शील और बुद्धि में 'राज्य–लक्ष्मी' की भाँति मानी जाती थीं। महाबल मुनि की आत्मा रानी प्रभावती के गर्भ में आई और उन्होंने एक अद्वितीय तेज सम्पन्न कन्या के रूप में जन्म् लिया। रानी को 'पुष्पमाला' पर सोने का दोहद हुआ था। इस कारण कन्या का नाम रखा गया मल्लीकुमारी।

मल्लीकुमारी अद्भुत लावण्य, रूप, तेज और प्रतिभा से युक्त थी। चंपक लता की भाँति ज्यों–ज्यों अवस्था को प्राप्त होती, उसकी मनोहारी सुषमा और अधिक निखरती जाती। लोग उसे देखकर रति, और उर्वशी का वर्णन भूल जाते।

मल्लीकुमारी के अद्वितीय रूप–लावण्य की चर्चा भरत खण्ड के कौने–कौने में होने लगी थी। बड़े–बड़े राजाओं के अन्तःपुर इस चर्चा से गरम थे कि इस समय में यदि कोई परम सुन्दरी स्त्री है, तो वह है मल्लीकुमारी। एक आश्चर्यजनक घटना घटी कि एक साथ छह पराक्रमी राजाओं के दूत मल्लीकुमारी की याचना करने मिथिला के दरबार में पहुँच गए।

सर्वप्रथम साकेतपुर के राजा प्रतिबुद्धि का दूत कुंभराजा के दरबार में पहुंचा और अभिवादन के साथ अपने राजा की बल, कीर्ति, वैभव आदि का बखान करते हुए निवेदन किया –

"महाराज! हमारे महाराज ने आपकी कन्यारत्न –मल्लीकुमारी को अपने अन्तःपुर की शोभा बढ़ाने के लिए नम्र याचना की है। यह सम्बन्ध जुड़ जाने से हम दोनों राज्यों के बीच घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध भी स्थापित हो जाएंगे।"

राजा कुंभ को यह याचना बहुत बुरी लगी। वे बोले – "तुम्हारा राजा अपने मुँह मियांमिट्ठू बन रहा है? कहाँ इन्द्र और चक्रवर्तियों को भी दुर्लभ मेरी कन्या और कहाँ तुम्हारा राजा! जाओ! अपने स्वामी को कहो, सद्बुद्धि से काम ले, अपने बल वैभव

के अनुरूप ही किसी अन्य राजकुमारी की प्रार्थना करे, मल्लीकुमारी को प्राप्त करने का स्वप्न न देखे।''

दूत उदास–निराश हुआ लौट गया। इधर थोड़े ही समय बाद चंपापुरी के राजा चन्द्रच्छाय का दूत कुंभ राजा की सभा में पहुँचा और मल्लीकुमारी के लिए अपने राजा की प्रार्थना प्रस्तुत की। कुंभराजा ने भी वही दो टूक जवाब दिया, दूत खिसिया कर लौट गया। इसी प्रकार श्रावस्ती के राजा रुक्मि, वाराणसी के शंख, हस्तिनापुर के अदीन शत्रु और कांपिल्यपुर के राजा जितशत्रु के दूत भी वहाँ पहुँचे। कुंभ राजा दूतों की बातें सुनते–सुनते परेशान हो गया, उसने सभी दूतों को एक ही जवाब दिया– '' मल्लीकुमारी की इच्छा करने से पहले वे अपना सामर्थ्य देख लें और किसी अन्य राजकुमारी की प्रार्थना करें।''

राजाओं ने जब कुंभराजा का कड़ा और दो टूक उत्तर सुना तो उनका अहंकार फुंफकारने लगा। वे अपमान का बदला लेने और मल्लीकुमारी को प्राप्त करने की जिद्द ठान कर अलग–अलग दिशाओं से मिथिला पर चढ़ाई करने आ गये। मिथिला चारों ओर से घिर गयी। युद्ध के नगाडे बजने लगे।

अचानक आक्रमण से कुंभराजा बहुत चिंतित हुआ। बाहर से किसी मित्र राजा का सहयोग भी नहीं मिल सकता था और एक साथ छह शत्रु राजाओं का सामना करने का बल भी उसके पास नहीं था। पिता की यह दुश्चिंता मल्लीकुमारी को भी असह्य हो गई। उसने कहा– ''पिताजी ! जहाँ बल से काम न चलता हो, वहाँ क्या करना चाहिए ?''

''बेटी ! वहाँ छल से काम निकाला जाता है, पर वह भी मुझे नहीं सूझ रहा है। पर कोई बात नहीं ! मैं आखिरी दम तक लडूँगा और तुम्हारी रक्षा करूँगा। ''

मल्लीकुमारी ने कहा– '' पिताजी ! इस छोटी–सी बात के लिए हजारों वीरों का रक्त बहाना, कोई समझदारी नहीं है। आप मेरी बात मानिए, और छहों राजाओं को मेरे सम्बन्ध के लिए निमन्त्रित कर लीजिए।''

कुंभराजा अवाक् – सा सुनता रहा – '' बेटी ! यह क्या कह रही हो ? समस्या सुलझाने के बजाय अधिक उलझ जाएगी ! राजनीति छल से चलती है, किन्तु छल का परिणाम कभी–कभी बड़ा भयंकर आता है। ''

मल्लीकुमारी ने धीरज बँधाते हुए कहा – '' पिताजी ! ऐसा नहीं होगा। मैं छल नहीं, वास्तविकता से जीतूँगी, मैंने सब योजना पहले से ही तैयार कर ली है। अशोकवाटिका में मैंने जो मोहनगृह बनवाया है, जिसमें छह सुन्दर गर्भगृह (कमरे) हैं, उनके बीच में

(मध्य भाग में) सोने की जाली लगी है और उस जाली के भीतर जो स्वर्ण-रत्नमय मेरी दिव्य प्रतिमा (पुतली) बनवाई है वह किस लिए ! वह इसी आपत्ति का निवारण करने के लिए है। मेरी सब योजना है, मुझे सब विधि मालूम है, आप अपने मंत्री को भेजिए और उन्हें उस मोहनगृह में निवास करने के लिए सूचना दीजिए।''

पुत्री की विलक्षण बुद्धि और दूरदर्शितापूर्ण चातुरी को देखकर राजा स्तम्भित रह गया। मल्लीकुमारी के कथनानुसार राजा ने छहों राजाओं को मोहनगृह में ठहरा दिया, नगर की घेरे बन्दी खत्म हो गई।

छहों राजा अलग-अलग गर्भ-गृहों में आकर ठहर गए। जाली के उस पार मध्य भाग में मल्लीकुमारी की दिव्य प्रतिमा मणियों के प्रकाश में जगमगा रही थी। ऐसा लग रहा था, मल्लीकुमारी सामने खड़ी मुस्कुरा रही है, उसकी आँखों से स्नेह का अमृत बरस रहा है, होंठ अभी – अभी हिलने को हैं। एक टक देखते रहें, अभी कुछ बोलेगी।

एक गुप्त मार्ग से मल्लीकुमारी प्रतिमा के पीछे जाकर खड़ी हो गई। धीरे से उसने प्रतिमा के मस्तक पर कमल की आकृति का बना हुआ मुकुट (ढक्कन) खोला। ढक्कन खुलते ही भयंकर दुर्गंध उछलने लगी। जैसे सांप आदि के मुर्दा कलेवर सड़ रहे हों। मल-मूत्र की भयंकर सड़ांध फैल रही हों, उससे भी हजार गुनी अधिक तीव्र, दुर्गंध उठने लगी। राजाओं का दम घुटने लगा। अब तक जो एक टक मल्लीकुमारी की प्रतिमा को निहार रहे थे, वे सहसा घबरा गये, कपड़ों से नाक-मुंह बन्द करके इधर-उधर भागने लगे, पर देखा, दरवाजे तो पहले से ही बन्द हैं, अब भीतर-ही-भीतर उनका दम घुटने लगा, भयंकर घबराहट और छटपटाहट मच गई। तभी मल्लीकुमारी ने सामने आकर पुकारा- '' आप तो अत्यन्त प्रेम व स्नेह के साथ मुझे देख रहे थे न ? अब क्या हो गया? क्या मैं अच्छी नहीं लग रही हूँ ?

मल्लीकुमारी का यह तीखा व्यंग्य राजाओं के हृदय में तीर-सा चुभ गया। पर, करते क्या, आज बुरी तरह फँस गए थे। वे बोले – '' देवानुप्रिये ! तुम्हारा रूप तो अद्वितीय है, जीवन भर देखते रहने से आँखें तृप्त नहीं होंगी ! किंतु यह भयंकर दुर्गंध कहाँ से आ रही है ! इसी से हमारा सिर फटा जा रहा हैं, यह दुर्गंध असह्य है।''

मल्लीकुमारी ने कहा- '' जिस देह के रूप को देखते-देखते आपकी आँखें नहीं अघाती थी, भौंरे की तरह जिस देह पुष्प पर आपका मन मुग्ध हो रहा था, वह दुर्गंध भी उसी देह की है। इस सुन्दर और मनोहर प्रतीत होने वाली त्वचा के भीतर यह गंदगी छिपी है, क्या आपको नहीं मालूम?''

राजाओं ने घबराकर कहा – " राजकुमारी ! पहले हमें बाहर निकलने दो, फिर तुम यह सब रहस्य हमें समझाना।"

तभी गर्भगृहों के दरवाजे खुल गए, छहों राजा बाहर आ गए और दीन भावों से पराजित की भाँति मल्लीकुमारी की तरफ देखने लगे।

मल्लीकुमारी ने बताया – " जो स्वादिष्ट और मधुर सुगंधित भोजन मैं इस उदर में डालती थी, उसी में का एक ग्रास भोजन प्रतिदिन इस पुतली में डाला जाता था। किन्तु उन स्वादिष्ट पुद्गलों की यह परिणति आज इतनी दुर्गंधमय बन गई है, कि उसकी गन्ध से भी आपका सिर फटा जा रहा है। क्या आप नहीं सोचते कि इस देह(उदर) की भी वही दशा होती, यदि इसमें से भी कहीं निर्गमन न होता। मानव का यह देह भी उतना ही अशुचिमय, दुर्गन्धमय है। उस मल–मूत्र–अशुचि के ऊपर यह मेरी चमड़ी का आवरण है, यदि इसे हटा दिया जाय तो आप इस तन से भी उसी प्रकार घृणा करेंगे, जिस प्रकार इस दुर्गन्ध से कर रहे हैं। "

मल्लीकुमारी की मर्मभेदी वाणी सुनकर राजाओं का अन्तर विवेक जगने लगा। भगवती ने आगे कहा – " हे देवानु प्रियों ! आप किस नश्वर और अशुचिमय रूप पर मुग्ध हो रहे हैं ? यह मल–मूत्र का भण्डार शरीर क्या कभी पवित्र और सुन्दर हो सकता है, यहाँ तो केवल सुन्दरता की भ्रांति है, इस भ्रांति को दूर हटाइये। अपने वास्तविक रूप को समझिए ! अपनी ज्योतिर्मय अनन्त आनन्दमय, परम शुद्ध आत्मा का दर्शन कीजिए। आप भूल गए हैं, विगत जन्म (अबसे तीसरे जन्म में) हम सातों घनिष्ठ मित्र थे, हम साथ–साथ दीक्षित हुए, साथ–साथ तपस्या की और साथ ही अन्तिम अनशन कर देह त्याग कर स्वर्ग में गए। मैंने आप लोगों के साथ कपट किया था, इसलिए इस जन्म में स्त्री वेद मिला है, पर कोई बात नहीं, हमें इस वेद भावना (अवेदी दशा) को ही मिटाकर वीतराग पद प्राप्त करना है, आत्मा के परम विशुद्ध स्वरूप में रमण करना है।"

भगवती मल्ली के उद्बोधन से राजाओं के अंतर चक्षु खुल गए। घने अन्धकार से निकलकर जैसे वे किसी प्रकाश पुंज के सामने खड़े हो गए। चिंतन करते–करते उन्हें भी जाति–स्मरण (पूर्व जन्म की स्मृति) ज्ञान हुआ अपना पूर्व सम्बन्ध देखा। अब तो पश्चात्ताप करते हुए सभी राजा भगवती के चरणों में झुक गए,क्षमा माँगकर बोले– " अब हम क्या करें ? कैसे इन दुःसंचित कर्मों से अपने को मुक्त करें ?"

भगवती ने कहा–" यदि आपके मन में विरक्ति जगी है, तो जाइये अपने राज्यों में, अपने राज्य आदि की व्यवस्था कर संसार त्याग के लिए स्वयं को तैयार कीजिए। मैं भी

शीघ्र ही दीक्षा लूंगी, आपको भी वही पथ अपनाना है और अपनी पुरानी मैत्री का उपसंहार इसी भव में करना है।

राजा कुंभ, अमात्य, सेनापति आदि सभी तब तक अशोक वाटिका में पहुँच गए थे। भगवती का उद्‌बोधन जिसने भी सुना, उसी का हृदय वैराग्य से आप्लावित हो गया। सभी राजा अपनी राजधानियों में गये। भगवती मल्ली ने पिताजी को दीक्षा का संकल्प बताया, वर्षी दान दिया और अन्त में तीन सौ स्त्रियों तथा तीन सौ पुरुषों के साथ संयम पथ स्वीकार किया।

भगवती मल्ली ने जिस दिन दीक्षा ग्रहण की, उसी दिन उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। प्रथम देशना में असंख्य देव–असुर–मानव उपस्थित हुए। वे छहों राजा भी प्रभु की देशना सुनने आये और पूर्व–संकल्प के अनुसार मुनि धर्म स्वीकार कर कठोर तपःसाधना कर ज्ञान- दर्शन प्राप्त करके यावत् सिद्ध हुए।

प्रभु मल्ली ने कुल पचपन हजार वर्ष की आयु भोग कर चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की चौथ में अर्द्धरात्रि के समय पाँच सौ साध्वियों और पाँच सौ साधुओं के साथ निर्जल एक मास के अनशन पूर्वक अधाति कर्मों के क्षीण होने पर सिद्ध हुए।

इस प्रकार प्रभु मल्ली का जीवन ओजस्वी, तेजस्वी और वर्चस्वी था। उनका व्यक्तित्व अनूठा और कर्तृत्त्व अद्‌भुत था।

卐

2. महासती अंजना

परिचय – महेन्द्रनगर के राजा महेन्द्र की रूपवती, गुणवती कन्या का नाम अंजना था। जब वह यौवनावस्था को प्राप्त हुई तब राजा को वर खोजने की चिन्ता हुई। मन्त्रियों ने सैकड़ों – हजारों विद्याधर युवकों का परिचय दिया, उनके चित्र दिखाए पर अंजना माता–पिता की लाड़ली थी अतः वे अच्छे परिवार में ही अपनी पुत्री ब्याहना चाहते थे। इसलिए राजा महेन्द्र ने अभी तक एक भी कुमार का चयन नहीं किया था।

कुमार का परिचय – एक मंत्री ने राजा हिरण्यांभ के पुत्र 'विद्युत्प्रभ' और राजा प्रहलाद के पुत्र 'पवनंजय' के पट–चित्र दिखलाए। राजा को ये दोनों कुमार ठीक लगे। उन्होंने मंत्री से उनकी विशेषताएँ पूछीं। मन्त्री ने कहा – " दोनों कुमार बड़े ही सुन्दर, हृष्ट–पुष्ट शरीर वाले और बहोत्तर कलाओं में निष्णात हैं, किंतु नैमित्तकों ने बताया है कि विद्युत्प्रभ तो युवावस्था में ही प्रव्रजित होकर मोक्ष प्राप्त कर लेगा।" प्रधान ने पुनः कहा कि – " राजन ! पवनंजय गुणवान हैं, घराना भी ऊँचा है और लम्बी आयु लेकर आए हैं अतः हमारी अंजना उनके साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करेगी।

तब राजा ने पवनंजय के साथ अंजना की सगाई तय कर दी।

पवनंजय का आना – एक दिन पवनंजय को विचार आया – " जिसके साथ मुझे पूरा जीवन बिताना है, मैं देखूं तो सही कि उसका वाणी–व्यवहार कैसा है?" विचार कर, विद्या के बल से उड़कर तथा अदृश्य होकर, पवनंजय अपने मित्र के साथ अंजना के महल में पहुँचे।

अंजना अपनी सहेलियों के साथ बैठी हुई थी। उस समय मिश्रिका नामक सहेली कह रही थी –"विद्युत्प्रभ के सामने पवनंजय कुछ नहीं है। वह कैसा गुणवान और धार्मिक संस्कारों वाला है ?" तब दूसरी सहेली बसंतमाला ने उत्तर दिया – वह दीक्षा धारण कर अल्पायु में ही मोक्ष प्राप्त कर लेगा अर्थात् आयु पूर्ण कर लेगा, अतः उससे विवाह करने पर तो अधिकांश जीवन वैधव्य में रहना पड़ेगा।"

इस पर मिश्रिका बोली–" नमक की कई गुनी मात्रा भी एक मिश्री की डली के बराबर मिठास नहीं दे सकती। विद्युत्प्रभजी यदि दीक्षा ले लें और उनके बिना भी रहना पड़े तो जीवन धर्मध्यान में ही बीतेगा।

अंजना ने यह सब सुनकर लज्जावश पवनंजय का पक्ष नहीं लिया। पवनंजयने सोचा

– " इसका मेरे से अधिक स्नेह दूसरे पुरुष पर है, तभी यह चुपचाप बैठी रही।" इसलिए वे बहुत क्रुद्ध हुए और शादी होने पर भी अंजना से बात तक नहीं करने का निश्चय कर लिया।

क्रोध–ही–क्रोध में वे अंजना को चरित्रहीन समझने लगे। विवाह हुए, बहुत वर्ष वीत गए मगर पवनंजय अंजना के महल में नहीं गये।

धैर्य का समय – पवित्र हृदय ऐसे झूठे आरोप को कैसे सह सकता था ? किन्तु आखिर अंजना सती स्त्री थी। उसे माता–पिता से सुन्दर संस्कार मिले थे। उन सुसंस्कारों ने उसे खूब धीरज बँधाया। उसने तनिक भी हिम्मत न हारी। मन–ही–मन पति का भला ही चाहती। नमस्कार सूत्र का स्मरण आदि धर्मध्यान करती हुई वह समय व्यतीत करती थी। इस तरह बारह वर्ष बीत गए।

मन बदला– पवनकुमार अपना अधिक समय राज्य के काम–काज में अथवा युद्ध में व्यतीत करते थे। युद्ध के मैदान में लड़ना उन्हें खेल मालूम होता था। एक बार उन्हें किसी दुश्मन पर चढ़ाई करनी पड़ी। सेना हवा की तरह आगे बढ़ती जा रही थी। रात होने पर सेना ने पड़ाव डाल दिया। पवनंजय एक पेड़ के नीचे सोये, पर उन्हें नीद नहीं आ रही थी। पवनंजय जिस पेड़ के नीचे सोये थे, उस पर एक घोंसला था। चकवा–चकवी आनन्द कर रहे थे। थोड़ी देर बाद चकवा उड़ने लगा। चकवी ने अपने पंखों से उसे रोकने की बहुत कोशिश की। लेकिन चकवा नहीं माना, वह निर्दय होकर उड़ गया। चकवी को बहुत दुःख हुआ और वह अपने पंख फड़फड़ाने लगी। करुण स्वर करने लगी।

चकवी की यह हालत देखकर पवनंजय सोचने लगे–" इस चकवी को पति का वियोग इतना कचोट रहा है तो बेचारी अंजना की क्या हालत होगी, जिसे मैंने वारह वर्ष से त्याग रखा है। क्या वह मेरे लिए नहीं रोती होगी ? हाय। क्या मैं एक पक्षी से भी गया–बीता हूँ। "

पवन का प्रवेश – उसी समय पवन ने अपने मित्र को जगाया। रातो–रात अंजना के पास जाने का प्रबन्ध किया। एक ओर सुबह दुश्मन पर सेना ले जाकर हमला करना था और दूसरी ओर पत्नी का प्रेम जीतना था। पवन अपने मित्र के साथ विमान में उड़कर अंजना के महल के पास पहुँचा। मित्र को नीचे वगीचे में विठा कर महल में प्रवेश किया।

अंजना की पति भक्ति - उस समय सव लोग गाढ़ी नींद में सो रहे थे। मगर अंजना उस वक्त भी भगवान का ध्यान कर रही थी। दासी ने आकर उसे समाचार दिया–"

राजकुमार पवनंजय पधार रहे हैं।'' यह सुनते ही अंजना घबरा गई। उसके मन में अनेक तरह के अनिष्ट विचार आने लगे। इतने में पवनकुमार पास में आ पहुँचे। उनके चेहरे पर स्नेह और प्रसन्नता का भाव देखकर अंजना आश्वस्त हुई। उसके सूखे चेहरे पर आनन्द उछलने लगा। आँखो से प्रेम के आँसू बह निकले। उसका गला रुंध गया। पवनंजय के आने पर वह सत्कार करने के लिए एक भी शब्द न बोल सकी। चुपचाप वह पति के चरणों में गिर पड़ी। आँखों से गिरने वाले आँसुओं से उसने पति के पैर धोये।

पवनंजय ने अंजना को खड़ा किया। कहने लगे – '' अंजना। तू देवी है। मेरे जैसे अन्यायी पति के दोषों को भी तू भूल गई। वास्तव में तेरी पतिभक्ति धन्य है।''

रुंधे हुए कंठ से अंजना बोली – नाथ ! ऐसा मत कहिए। यह तो मेरे ही कर्मों का दोष है। इसमें आप क्या करते ? आज मेरे जीवन में आनन्द का दिन है जो मुझे आप अपने चरणों में स्थान दे रहे हैं।

दोनों एक दूसरे के दोषों को भूल गए। सुबह होते ही पवनंजय को सेना के पास पहुँचना था। अंजना ने उन्हें कर्त्तव्यपालन से नहीं रोका। जाते समय यादगार के रूप में पवनंजय ने अंजना को अपने हाथ की नामांकित अंगूठी दी। अंजना ने भरे हृदय से पवनंजय को विदाई दी।

कलंक – पवनंजय उस रात अंजना से मिले हैं, यह किसी को मालूम नहीं था। अंजना गर्भवती हो गई। कुछ महीने बीत गए। सासु को अंजना के गर्भवती होने का पता चला। उसके मन में सन्देह हुआ – पवन ने बारह वर्ष से अंजना को त्याग रखा है। फिर अंजना गर्भवती कैसे हो गई ? अंजना ने पवनकुमार की दी हुई नामांकित अंगूठी बतलाई। सच्ची–सच्ची घटना कही। मगर सासु को विश्वास नहीं आया। सारे नगर में बात फैल गई। निर्दोष अंजना के माथे पर कलंक का टीका लग गया। सास–ससुर ने उसे घर से निकाल दिया।

बेचारी अंजना अपने माँ–बाप के घर पहुँची। मगर माँ–बाप ने उसे कलंकित समझकर घर में नहीं आने दिया। अंजना ने विचार किया – अभी मेरे भाग्य में दुःख भोगने शेष हैं।

अंजना राजा की पुत्री और राजकुमार की पत्नी थी। लेकिन आज उसे आश्रय देने वाला कोई नहीं था। अन्याय सहन न कर सकने के कारण वह नदी में डूबकर मरने को तैयार हो गई। वह नदी में छलांग लगाने ही वाली थी कि उसे विचार आया – '' मैं निर्दोष

हूँ , निष्कलंक हूँ। मेरे पेट में पति की धरोहर है। मुझे गर्भ के जीव को नष्ट करने का क्या अधिकार है ? मुझे इसकी रक्षा करनी ही चाहिए।''

ऐसा विचार कर उसने अपनी सहेली बसंतमाला के साथ जंगल की राह ली। वहीं एक सुन्दर पुत्र का जन्म् हुआ। वह जंगल में बड़े ही प्रेम से अपने पुत्र का पालन – पोषण करने लगी। पुत्र के अंग वज्र के होने से नाम बजरंग रखा गया जो महाबली हनुमान के नाम से प्रसिद्ध हुए।

एक दिन हनुपुर का राजा प्रतिसूर्य (शूरसेन) उधर से होकर कहीं जा रहा था। उसने अपनी भानजी अंजना को दुःखमय स्थिति मे देखा। वह उसे पुत्री समझ कर अपने घर ले गया।

उधर पवनकुमार शत्रुओं को जीतकर वापिस लौटे। आते ही अंजना के महल में गए। बहुत दिनों बाद आज वह अंजना से मिलने जा रहे थे। अंजना कैसी होगी ? क्या कर रही होगी? इस तरह से सोचते हुऐ व अंजना के अन्तःपुर तक जा पहुँचे। दरवाजे के पास दासी बैठी हुई थी। उसने भरे गले से अंजना का सारा किस्सा सुनाया।

मोह छूटा – अंजना का वृतान्त सुनकर पवनकुमार को बहुत दुःख हुआ। संसार पर से उनका प्रेम उठ गया। दिल में खेद हो आया। वह उसी समय, उसी हालत में अंजना को खोजने चल पड़े। बहुत तलाश करने के बाद अंजना का पता लगा। इस प्रकार संसार के स्वरूप को जानकर तथा धर्म की महिमा समझकर दोनों को वैराग्य उत्पन्न हो गया। दोनों ने दीक्षा ग्रहण की। अंजना और पवनकुमार को देखकर उनकी पुरानी दासी भी विरक्त हो गई। उसे भी संसार फीका लगा। उसने भी इन दोनों के साथ–साथ दीक्षा अंगीकर कर ली।

अंजना महासती और पवन कुमार निरतिचारपूर्वक संयम का पालन करते हुए अंत समय संलेखना संथारा करके देवलोक सिधार गये और वहां से उनका जीव महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

卐

3. अनाथी मुनि

एक समय मगध देश का स्वामी राजा श्रेणिक सैर करने के लिए जंगल की ओर निकला सैर करता हुआ राजा मंडितकुक्षि नामक उद्यान में आ पहुंचा। वहां एक वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाए हुए एक ध्यानस्थ मुनि को देखा। मुनि की प्रसन्न मुखमुद्रा, कान्तिमय दैदीप्यमान विशाल भाल और सुंदर रूप को देखकर राजा श्रेणिक विस्मित एवं आश्चर्यचकित हो गया। वह विचार करने लगा कि "अहा ! कैसी इनकी कान्ति है ? कैसा इनका अनुपम रूप है ? अहा ! इस योगीश्वर की कैसी अपूर्व सौम्यता, क्षमा, निर्लोभता तथा भोगों से निवृत्ति है !" उस योगीश्वर के दोनों चरणों को नमस्कार करके प्रदक्षिणा देकर न अति दूर और न अति पास इस तरह खड़ा होकर, दोनों हाथ जोड़कर राजा श्रेणिक विनय पूर्वक इस प्रकार पूछने लगा–"हे आर्य ! इस तरुणावस्था में भोग–विलास के समय आप श्रमण धर्म पालन करने के लिए क्यों उद्यत हुए? इस बात का उत्तर मैं आपके मुख से सुनना चाहता हूं।"

राजा के प्रश्न को सुनकर मुनि कहने लगे कि हे राजन् ! मैं अनाथ हूँ, मेरा रक्षक कोई नहीं है और न मेरा कोई कृपालु मित्र ही है इसीलिए मैंने मुनिव्रत धारण कर लिया है।

योगीश्वर का उत्तर सुनकर मगध देश के अधिपति राजा श्रेणिक को आश्चर्य हुआ। वह योगीश्वर से कहने लगा कि क्या आप जैसे प्रभावशाली तथा समृद्धिशाली पुरुष को अभी तक कोई स्वामी नहीं मिल सका है ? हे योगीश्वर ! यदि सचमुच आपका कोई सहायक नहीं है तो मैं सहायक होने को तैयार हूँ। मनुष्य जन्म अत्यंत दुर्लभ है इसलिए आप मित्र तथा स्वजनों से युक्त होकर सुखपूर्वक हमारे पास रहो और यथेच्छ भोगों को भोगो।

योगीश्वर कहने लगे कि 'हे मगधेश्वर श्रेणिक ! तू स्वयं ही अनाथ है। जो स्वयं अनाथ है वह दूसरों का नाथ कैसे हो सकता है ?' मुनि के वचन सुनकर राजा को अति विस्मय एवं आश्चर्य हुआ क्योंकि राजा के लिए ये वचन अश्रुतपूर्व थे। इसके पहले राजा ने ऐसे वचन कभी किसी से नहीं सुने थे। अतः उसे व्याकुलता और संशय दोनों ही हुए। राजा को यह विचार उत्पन्न हुआ कि वह योगी मेरी शक्ति, सामर्थ्य तथा सम्पत्ति को नहीं जानता है इसीलिए ऐसा कहता है। राजा अपना परिचय देता हुआ योगीश्वर से कहने लगा कि मैं अनेक हाथी, घोड़ों, करोड़ों आदमियों, शहरों एवं देशों (अंगदेश और मगध देश का स्वामी हूं। सुंदर अंतःपुर में मनुष्य संबंधी सर्वोत्तम भोग भोगता हूं। मेरी सत्ता (3

और ऐश्वर्य अनुपम है। इतनी विपुल सम्पत्ति होने पर भी मैं अनाथ कैसे हूं ? हे मुनीश्वर! कहीं आपका कथन असत्य तो नहीं है ? मुनि कहने लगे कि राजन्! तू अनाथ और सनाथ के परमार्थ एवं असली रहस्य को न तो जान ही सका है और न समझ ही सका है। इसी से तुझे संदेह हो रहा है। मुझे अनाथता का ज्ञान कहाँ और किस प्रकार हुआ और मैंने दीक्षा क्यों ली, हे राजन्! इस सर्व वृत्तान्त को ध्यानपूर्वक सुनो-

प्राचीन नगरों में कोशांबी नाम की एक नगरी थी। वहां धन वैभव से परिपूर्ण मेरे पिता रहते थे। एक समय तरुण अवस्था में मुझे आंख की अतुल पीड़ा हुई और उस पीड़ा के कारण मेरे सारे शरीर में दाहज्वर हो गया। जैसे कुपित हुआ शत्रु मर्मस्थानों पर अति तीक्ष्ण शस्त्रों द्वारा प्रहार कर घोर पीड़ा पहुंचाता है, वैसी ही तीव्र मेरी आंख की पीड़ा थी। वह दाहज्वर की दारुण पीड़ा इन्द्र के वज्र की तरह मेरी कमर, मस्तक तथा हृदय को पीड़ित करती थी। उस समय वैद्यक शास्त्र में अति प्रवीण, जड़ी-बूटी तथा मंत्र-तंत्र आदि विद्या में पारंगत, शास्त्र विचक्षण तथा औषधि करने में अति दक्ष अनेक वैद्याचार्य मेरे इलाज के लिए आए। उन्होंने अनेक प्रकार से मेरी चिकित्सा की किन्तु मेरी पीड़ा को शांत करने में वे समर्थ न हुए। मेरे पिता मेरे लिए सब सम्पत्ति लगा देने को तैयार थे किन्तु उस दुःख से छुड़ाने में तो वे भी असमर्थ ही रहे। मेरी माता भी मेरी पीड़ा को देखकर दुखित एवं अतिव्याकुल हो जाती थी किन्तु दुःख दूर करने में वह भी असमर्थ थी। मेरे सगे छोटे और बड़े भाई तथा सगी बहिनें भी मुझे उस दुःख से न बचा सकीं। मुझ पर अत्यंत स्नेह रखने वाली पति परायणा मेरी पत्नी ने सब श्रृंगारों का त्याग कर दिया था। रात-दिन वह मेरी सेवा में लगी रहती, एक क्षण के लिए भी वह मेरे से दूर न होती थी किन्तु अपने आंसुओं से मेरे हृदय को सिंचन करने के सिवाय वह भी कुछ न कर सकी। मेरे स्वजन स्नेही और कुटुम्बीजन भी मुझे उस दुःख से न छुड़ा सके, यही मेरी अनाथता थी।

इस प्रकार चारों तरफ से असहायता और अनाथता का अनुभव होने से मैंने सोचा कि प्राणी को इस अनंत संसार में बार- बार दुःसह वेदना का अनुभव करना होता है, यह बहुत असह्य हैं इसलिए अब की बार यदि मैं इस दारुण वेदना से छूट जाऊं तो क्षान्त (क्षमाशील), दान्त तथा निरारम्भी होकर तत्क्षण ही संयम धारण करूंगा। हे राजन्! रात्रि को ऐसा निश्चय करके मैं सो गया। ज्यों-ज्यों रात्रि व्यतीत होती गई त्यों-त्यों वह मेरी दारुण वेदना भी क्षीण होती गई। प्रातःकाल तो मैं बिल्कुल निरोग हो गया। अपने माता-पिता से आज्ञा लेकर शांत-दांत और निरारम्भी होकर संयमी (साधु) बन

गया। संयम धारण करने के बाद मैं अपने आपका तथा समस्त त्रस और स्थावर जीवों का नाथ (रक्षक) हो गया।

हे राजन् ! यह आत्मा ही आत्मा के लिए वैतरणी नदी तथा कूटशाल्मली वृक्ष के समान दुःखदायी है और यही कामधेनु तथा नंदन वन के समान सुखदायी भी है। यह आत्मा ही सुख–दुःख का कर्त्ता और भोक्ता है। यदि सुमार्ग पर चले तो यह आत्मा ही अपना सब से बड़ा मित्र है, और यदि कुमार्ग पर चले तो आत्मा ही अपना सबसे बड़ा शत्रु है।

इस प्रकार अनाथी मुनि ने राजा श्रेणिक को अपना पूर्व वृत्तांत सुनाकर यह बतलाया कि मुझे किस प्रकार वेदना सहन करनी पड़ी और किस प्रकार मुझे अनाथता का अनुभव हुआ। छः काय जीवों के रक्षक महाव्रतधारी मुनिराज ही सच्चे सनाथ (रक्षक) हैं किन्तु मुनिवृत्ति धारण करके जो उसका सम्यक प्रकार से पालन नहीं कर सकते, वे भी अनाथ ही हैं। यह दूसरे प्रकार की अनाथता है।

इस प्रकार कर्म शत्रुओं के घोर शत्रु, महातपस्वी, विपुल यशस्वी, दृढ़व्रती महामुनीश्वर अनाथी ने अनाथता का सच्चा अर्थ राजा श्रेणिक को सुनाया। इसे सुनकर राजा श्रेणिक अत्यंत प्रसन्न हुआ। दोनों हाथ जोड़कर राजा श्रेणिक उन महामुनीश्वर से इस प्रकार अर्ज करने लगा– हे भगवन् ! आपने मुझे सच्चा अनाथता का स्वरूप बड़ी ही सुंदरता के साथ समझा दिया। आपका मानव जन्म पाना धन्य है। आपकी यह दिव्य कान्ति, दिव्य प्रभाव, शांत मुखमुद्रा, उज्ज्वल सौम्यता धन्य है। जिनेश्वर भगवान् के सत्यमार्ग में चलने वाले आप वास्तव में सनाथ हैं, सबांधव हैं। संयमिन् ! अनाथ जीवों के आप ही नाथ हैं। सब प्राणियों के आप ही रक्षक हैं। हे क्षमा सागर महापुरुष ! मैंने आपके ध्यान में विघ्न (भंग) डालकर और भोग भोगने के लिए आमंत्रित करके आपका जो अपराध किया है उसके लिए मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।

इस प्रकार राजाओं में सिंह के समान श्रेणिक राजा ने श्रमण सिंह (साधुओं में सिंह के समान) अनाथी मुनि की परम भक्ति पूर्वक स्तुति की। मुनि का धर्मोपदेश सुनकर राजा श्रेणिक अपने अन्तःपुर (सब रानियां और दास दासियां) और सकल कुटुम्बी जनों सहित मिथ्यात्व का त्याग कर शुद्ध धर्मानुयायी बन गया।

अनाथी मुनि के इस अमृतोपम समागम से राजा श्रेणिक का रोम–रोम प्रफुल्लित हो गया। परम भक्ति पूर्वक मुनिश्वर को वंदना नमस्कार करके अपने स्थान को चला गया।

तीन गुप्तियों से गुप्त, तीन दण्डों (मनदण्ड, वचन दण्ड और कायदण्ड) से विरक्त,

गुणों के भंडार अनाथी मुनि अनासक्त भाव से अप्रतिबंध विहार पूर्वक इस पृथ्वी पर विचरने लगे।

साधुता में ही सनाथता है। आदर्श त्याग में ही सनाथता है। आसक्ति में अनाथता है। भोगों में आसक्त होना अनाथता है और इच्छा और वासना की परतंत्रता में भी अनाथता है। अनाथता को छोड़कर सनाथ होना, अपने आप ही अपना मित्र बनना प्रत्येक मुमुक्षु का कर्त्तव्य है।



काव्य विभाग

श्री भक्तामर स्तोत्र-परिचय

भक्तामर स्तोत्र के रचयिता आचार्य श्री मानतुंगजी थे। आप बड़े ही प्रभावशाली विद्वान, आध्यात्मिक रस के रसिक, जिन शासन प्रभावक आचार्य हुए। आपने भक्ति रस से ओत प्रोत हो भक्तामर स्तोत्र में प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ की स्तुति की।

इस स्तोत्र का छंद बसंततिलका है। संस्कृत में यह छंद मधुर एवं श्रेष्ठ माना जाता है। इस स्तोत्र की 48 गाथाएं अपने आप में रामबाण औषधि हैं।

<u>भक्तामर की रचना</u> :- एक समय अवंती नरेश राजा भोज ने दरबारियों के बहकावे में आकर चमत्कार देखने की इच्छा से श्री मानतुगांचार्य जी को हथकड़ी बेड़ी डालकर कारावास में कैद करवा दिया और बाहर से मजबूत तालों से बंद कर पहरा लगा दिया। तीन दिन तक आचार्य श्री मानतुंगजी ध्यान में तल्लीन रहे और चौथे दिन भगवान आदिनाथ की स्तुति के रूप के रूप में भक्तामर की रचना प्रारंभ की। ज्यों ही छियालिसवां श्लोक बोल रहे थे वैसे ही हथकड़ी, बेड़ी और ताले आदि सभी बंधन टूटकर अपने आप अलग हो गए। आचार्य श्री के भक्तिरस का प्रभाव राजा भोज पर हुआ और वे जैन धर्म के अनुयायी बन गये।

प्रातःकाल में भक्तामर स्तोत्र का उच्चारण भावपूर्वक जो श्रद्धालु करते हैं उसे आध्यात्मिक वैभव अपने आप प्राप्त हो जाता है।

प्रभु भक्ति को ज्ञानियों ने महान निर्जरा का हेतु बताया है। स्तुति वह महान शक्ति है जिससे आत्मा सुलभ बोधि को प्राप्त करती है तथा उत्कृष्ट भावों से भक्ति करने वाला जीव तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन कर लेता है।

1. 卐 श्री भक्तामर–स्त्रोत 卐

भक्तामर–प्रणत–मौलि–मणि–प्रभाणा–
मुद्योतकं दलित–पाप–तमो–वितानम् ।
सम्यक्–प्रणम्य जिन–पाद–युगं युगादा–
वालम्बनं भव–जले पततां जनानाम् ।1।

य: संस्तुत: सकल–वाङ्मय–तत्वबोधा–
दुद्भुत–बुद्धि–पटुभि: सुर–लोक–नाथै:।
स्तोत्रैर्–जगत् त्रितय–चित्त–हरै–रुदारै:,
स्तोष्ये–किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ।2।

बुद्धया विनाऽपि विबुधार्चित–पाद–पीठ !
स्तोतुं समुद्यत–मतिर्–विगत–त्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जल–संस्थित–मिन्दुबिम्ब–
मन्य: क इच्छति जन: सहसा ग्रहीतुम् ? ।3।

वक्तुं गुणान् गुण–समुद्र ! शशांक–कान्तान्,
कस्ते क्षम: सुर–गुरु–प्रतिमोऽपि बुद्धया ?
कल्पान्त–काल–पवनोद्धत–नक्र–चक्रं
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ? ।4।

सोऽहं तथापि तव भक्ति–वशान्–मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगत–शक्तिरपि – प्रवृत्त:!
प्रीत्याऽऽत्म–वीर्य मविचार्य मृगो मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निज–शिशो: परि–पालनार्थम ?।5।

अल्प–श्रुतं श्रुतवतां परिहास – धाम,
त्वद्–भक्तिरेव मुखरी–कुरुते बलान्माम् !
यत्कोकिल: किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र–चारु–कलिका–

त्वत्संस्तवेन भव-संतति-सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षय-मुपैति शरीर-भाजाम् ।
आक्रान्त-लोक-मलि-नील-मशेषमाशु,
सूर्यांशु-भिन्नमिव शार्वर-मन्धकारम् ।7।

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात् ।
चेतो-हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु,
मुक्ता-फल-द्युतिमुपैति ननूद-बिन्दुः ।8।

आस्तां तव स्तवन-मस्त-समस्त-दोषं,
त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्र - किरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकास-भाञ्जि ।9।

नात्यद्भुतं भुवन-भूषण ! भूतनाथ !,
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्त - मभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा ।
भूत्याश्रितं य इह नात्म-समं करोति ? ।10।

दृष्ट्वा भवन्त-मनिमेष-विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ? ।11।

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैक - ललाम-भूत !
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समान मपरं नहि रूपमस्ति ।12।

वक्त्रं क्व ते सुर - नरोरग - नेत्रहारि,
निःशेष-निर्जित-जगत्-त्रितयोपमानम् ?
बिम्बं कलंक-मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्-वासरे भवति पाण्डु-पलाश-कल्पम् ?(13)

सम्पूर्ण – मंडल–शशांक–कला–कलाप–
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयन्ति ।
ये संश्रितास्–त्रिजगदीश्वर ! नाथ–मेकं,
कस्तान्–निवारयति संचरतो यथेष्टम् ? ।14।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभिर्–
नीतं मनागपि मनो न विकार–मार्गम् ?
कल्पान्त–काल–मरुता चलिता–चलेन,
किं मन्दराद्रि–शिखरं चलितं कदाचित् ?।15।

निर्धूम – वर्ति – रपवर्जित–तैलपूरः,
कृत्स्नं जगत्–त्रयमिदं प्रकटी–करोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानाम्
दीपोऽपरस् त्व–मसि नाथ ! जगत्प्रकाशः।16।

नास्तं कदाचि दुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टी–करोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदर – निरुद्ध – महाप्रभावः,
सूर्यातिशायि महिमासि मुनीन्द्र ! लोके ।17।

नित्योदयं दलित–मोह–महान्धकारं,
गम्यं न राहु–वदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्ज–मनल्प कान्ति,
विद्योतयज्–जगदपूर्व–शशांक–बिम्बम् ।18।

किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा ?
युष्मन्मुखेन्दु–दलितेषु तमस्सु नाथ !
निष्पन्न–शालिवन–शालिनि जीव–लोके,
कार्यं कियज्–जलधरै–र्जल,भार–नम्रैः ? ।19।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरि–हरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन्–मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काच–शकले किरणा–कुलेऽपि ।20।

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन् मनो हरति नाथ ! भवान्तरेऽपि ? ।21।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी-प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुर-दंशु-जालम् ।22।

त्वा-मामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्य-वर्ण-ममलं तमसः पुरस्तात् ।
त्वामेव सम्य-गुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिवः शिव-पदस्य मुनीन्द्र ! पंथाः ।23।

त्वा-मव्ययं विभु-मचिन्त्य-मसंख्य-माद्यं,
ब्रह्माण-मीश्वर-मनन्त-मनंग-केतुम् ।
योगीश्वरं विदित-योग-मनेक-मेकं,
ज्ञान-स्वरूप-ममलं प्रवदन्ति सन्तः ।24।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित ! बुद्धि-बोधात्-
त्वं शंकरोऽसि भुवन-त्रय-शंकरत्वात् ।
धाताऽसि धीर । शिव-मार्ग-विधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ।25।

तुभ्यं नमस् त्रिभुवनार्ति-हराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रि जगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधि-शोषणाय ।26।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैर-शेषैस्-
त्वं संश्रितो निरवकाश-तया मुनीश?
दोषै-रूपात-विविधाश्रय-जात-गर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ।27।

उच्चैर्-शोक-तरु-संश्रित-मुन्मयूख-
माभाति रूप-ममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्-किरण-मस्त-तमो-वितानम्
बिम्बं रवे-रिव पयोधर-पार्श्व-वर्ति ।28।

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्-विलस-दंशु-लता-वितानं,
तुंगो-दयाद्रि-शिरसीव सहस्र-रश्मेः ।29।

कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कल-धौत-कान्तम् ।
उद्यच्छशांक-शुचि-निर्झर-वारि-धार-
मुच्चैस्तटं सुर-गिरे-रिव शात-कौम्भम् ।30।

छत्र-त्रयं तव विभाति शशांक-कान्त -
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानुकर-प्रतापम् ।
मुक्ताफल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभं
प्रख्यापयत्-त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ।31।

गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभागस्
त्रैलोक्य-लोक-शुभ-संगम-भूतिदक्षः ।
सद्धर्म- राज- जय -घोषण-घोषकः सन्,
खे दुन्दुभि-र्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ।32।

मन्दार - सुंदर - नमेरु - सुपारिजात-
सन्तानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्टि-रुद्धा ।
गन्धोद-बिन्दु-शुभ-मन्द- मरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ।33।

शुम्भत्प्रभा-वलय-भूरि-विभा विभोस्ते,
लोक-त्रय-द्युति-मतां द्युति-मा -
प्रोद्यद्-दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख
दीप्त्या जयत्यपि निशा-मपि-सोम

स्वर्गापवर्ग – गम – मार्ग – विमार्गणेष्ट:
सद्धर्म–तत्त्व–कथनैक–पटुस्त्रिलोक्या:।
दिव्य–ध्वनि–र्भवति ते विशदार्थ–सर्व–
भाषा–स्वभाव–परिणाम–गुणै: प्रयोज्य: ।35।

उन्निद्र – हेम – नव – पंकज – पुञ्ज–कान्ति,
पर्युल्लसन्–नख–मयूख–शिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्त:,
पद्मानि तत्र विबुधा: परिकल्पयन्ति ।36।

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्–जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशन–विधौ न तथा परस्य ।
यादृक् प्रभा दिनकृत: प्रहतान्धकारा,
तादृक् कुतो गृह–गणस्य विकाशिनोऽपि ? ।37।

श्च्योतन्मदाविल–विलोल–कपोल–मूल–
मत्त–भ्रमद्–भ्रमर–नाद–विवृद्ध–कोपम् ।
ऐरावताभ मिभ – मुद्धत – मापतन्तं,
दृष्टवा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ।38।

भिन्नेभ–कुम्भ–गल–दुज्ज्वल–शोणिताक्त–
मुक्ता–फल–प्रकर–भूषित–भूमिभाग: ।
बद्ध – क्रम: क्रम – गतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रम–युगाचल–संश्रितं ते ।39।

कल्पान्त–काल–पवनोद्धत–वह्नि–कल्पं,
दावानलं ज्वलित–मुज्ज्वल–मुत्स्फुलिंगम् ।
विश्वं जिघत्सु–मिव सम्मुख–मापतन्तं,
त्वन्नाम–कीर्तन–जलं शमयत्य–शेषम् ।40।

रक्तेक्षणं समद–कोकिल–कण्ठ–नीलं,
क्रोधोद्धतं फणिन–मुत्फण–मापतन्तम् ।
आक्रामति क्रम–युगेन निरस्त–शंकस्,
त्वन्नाम–नाग–दमनी हृदि यस्य पुंस: ।41।

वल्गत्-तुरंग-गज-गर्जित-भीम-नाद-
माजौ बलं बलवता-मपि-भूपतिनाम् ।
उद्यद्-दिवाकर - मयूख-शिखापविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्-तम-इवाशु-भिदा-मुपैति ।42।

कुन्ताग्र - भिन्न-गज-शोणित-वारि वाह
वेगावतार - तरणातुर - योध - भीमे ।
युद्धे जयं विजित-दुर्जय - जेय-पक्षास्-
त्वत्पाद-पंकज-वनाश्रयिणो लभन्ते ।43।

अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र-
पाठीन-पीठ-भय-दोल्वण-वाडवाग्नौ ।
रंग-त्तरंग-शिखर-स्थित-यान पात्रास् -
त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति । ।44।

उद्भुत-भीषण-जलो-दर-भार-भुग्नाः,
शोच्यां दशा-मुपगताश्च्युत-जीविताशाः।
त्वत्पाद-पंकज रजोऽमृत-दिग्ध देहा,
मर्त्या भवन्ति मकर-ध्वज-तुल्य-रूपाः ।45।

आपाद - कण्ठ - मुरु - श्रृंखल - वेष्टितांगा,
गाढं-बृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जंघाः।
त्वन्नाम-मन्त्र-मनिशं-मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगतबन्ध-भया भवन्ति ।46।

मत्तद्विपेन्द्र - मृगराज - दवानलाहि,
संग्राम-वारिधि-महोदर बन्धनोत्थम् ।
तस्याशु-नाश-मुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमान-धीते ।47।

स्तोत्र-स्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणै-र्निबद्धां,
भक्त्या मया रुचिर-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठ-गता-मजस्रं,
तं मानतुंग-मवशा समुपैति लक्ष्मीः ।48।

-*-

2. रत्नाकर पच्चीसी

शुभ केलि के आनंद के, धन के मनोहर धाम हो,
नरनाथ से सुरनाथ से, पूजित चरण गत काम हो।
सर्वज्ञ हो सर्वोच्च हो, सबसे सदा संसार में,
प्रज्ञा कला के सिन्धु हो, आदर्श हो आचार में ॥1॥

संसार – दुःख के वैद्य हो, त्रैलोक्य के आधार हो,
जय श्रीश रत्नाकर प्रभो ! अनुपम कृपा–अवतार हो।
वीतराग ! हे विज्ञप्ति मेरी, मुग्ध की सुन लीजिए,
क्योंकि प्रभो ! तुम विज्ञ हो मुझको अभय वर दीजिए ॥2॥

माता–पिता के सामने, बोली सुना कर तोतली,
करता नहीं क्या अज्ञ बालक, बाल्य–वश लीलावली ?
अपने हृदय के हाल को, वैसे यथोचित रीति से,
मैं कह रहा हूं आपके आगे विनय और प्रीति से ॥3॥

मैंने नहीं जग में कभी, कुछ दान दीनों को दिया,
मैं सच्चरित भी हूं नहीं, मैंने नहीं तप भी किया।
शुभ भावना मेरी हुई, अब तक न इस संसार में,
मैं घूमता हूं व्यर्थ ही, भ्रम से भवोदधि धार में ॥4॥

क्रोधाग्नि से मैं रात दिन हा ! जल रहा हूं हे प्रभो।
मैं लोभ नामक साँप से, काटा गया हूं हे प्रभो !
अभिमान के खल ग्राह से, अज्ञानवश मैं ग्रस्त हूँ,
किस भांति हो, स्मृत आप, माया–जाल से मैं व्यस्त हूँ ॥5॥

लोकेश ! पर–हित भी किया, मैंने न दोनों लोक में,
सुख–लेश भी फिर क्यों मुझे हो, झीखता हूँ शोक में।
जग में हमारे से नरों का, जन्म ही बस व्यर्थ है,
मानों जिनेश्वर ! यह जगत की पूर्णता के अर्थ है ॥6॥

प्रभु ! आपने निज मुख सुधा का, दान यद्यपि दे दिया,
यह ठीक है पर चित्त ने, उसका न कुछ भी फल लिया।
आनंद–रस में डूब कर, सद्वृत्त वह होता नहीं,
है वज्र सा मेरा हृदय, कारण पड़ा बस है यही ॥7॥

रत्नत्रयी दुष्प्राप्य है, प्रभु से उसे मैंने लिया,
बहुकाल तक बहु बार जब, जग का भ्रमण मैंने किया।
हा ! खो गया वह भी विवश मैं नींद आलस में रहा,
अब बोलिए उसके लिए रोऊं प्रभो ! किसके यहाँ ? ॥8॥

संसार ठगने के लिए, वैराग्य को धारण किया,
जग को हंसाने के लिए, उपदेश धर्मों का दिया।
झगड़ा मचाने के लिए, मम जीभ पर विद्या बसी,
निर्लज्ज, हो कितनी उड़ाऊँ, हे प्रभो ! अपनी हंसी ॥9॥

पर दोष को कहकर सदा, मेरा वदन दूषित हुआ,
लख कर पराई नारियों को, हा ! नयन दूषित हुआ।
मन भी मलिन है सोचकर, पर की बुराई हे प्रभो।
किस भांति होगी लोक में, मेरी भलाई हे प्रभो ! ॥10॥

मैंने बढाई निज विवशता, हो अवस्था के वशी,
भक्षक रतीश्वर से हुई, उत्पन्न जो दुःख राक्षसी।
हा ! आपके सम्मुख उसे, अति लाज से प्रकटित किया,
सर्वज्ञ, हो सब जानते, स्वमेव संसृति की क्रिया ॥11॥

अन्य मंत्रों से परम, परमेष्ठि मंत्र हटा दिया,
सत् -शास्त्र वाक्यों को, कुशास्त्रों से दबा मैंने दिया,
दुःसंग से दुष्कर्म कर्त्ता, जान लेना तू मुझे,
लोकेश ! इस कारण मति भ्रम, मान लेना तू मुझे ॥12॥

हा तज दिया मैंने प्रभो ! प्रत्यक्ष पाकर आपको,
अज्ञान–वश मैंने किया फिर, देखिए किस पाप को।
वामाक्षियों के कुच कटाक्षों पर सदा मरता रहा।
उनके विलासों का हृदय में, ध्यान भी धरता रहा ॥ 13 ॥

लख कर युवतियों के मनोहर, नेत्र मुख जो रस मिला,
इस हेतु उनके प्रेम में, मम दौड़ कर मानस मिला।
सत्शास्त्र के सिद्धांत–निधि, सुन भी डरा है वह नहीं,
संसार–तारक ! जान पड़ता, कुछ मुझे कारण नहीं ॥14॥

मुझ में न अपने अंग के, सौंदर्य का आभास हैं,
मुझमें न गुण–गण है विमल, मुझमें न केली –विलास है।
प्रभुता न मुझमें स्वप्न की भी, है चमकती देखिए,
तो भी भरा हूं गर्व से, मैं मूढ़ हो, किसके लिए ॥15॥

हा ! नित्य घटती आयु है, पर पाप–मति घटती नहीं,
आई बुढ़ौती पर विषय से, कामना हटती नहीं।
मैं यत्न करता हूं दवा में, धर्म में करता नहीं,
दुर्मोह–महिमा से ग्रसित हूँ, नाथ ! बच सकता नहीं ॥16॥

अघ पुण्य को जग आत्मा को, मैंने कभी माना नहीं,
हा ! आप आगे हैं खड़ें, दीनानाथ से यद्यपि यहीं।
तो भी खलों के वाक्य को, मैंने सुना कानों वृथा,
धिक्कार मुझको है गया, मम जन्म् ही मानो वृथा ॥17॥

सत्पात्र–पूजन देव–पूजन, कुछ नहीं मैंने किया,
मुनिधर्म श्रावकधर्म का, भी नहीं सविधि पालन किया।
नर–जन्म् पाकर भी वृथा ही, मैं उसे खोता रहा,
मानो अकेला घोर वन में, व्यर्थ ही रोता रहा। ॥18॥

प्रत्यक्ष सुखकर जैन मत में, प्रीति मेरी थी नहीं,
जिननाथ ! मेरी देखिए, है मूढ़ता भारी यही,
हा ! कामधेनु कल्पद्रुमादिक के यहां रहते हुए,
हमने गंवाया जन्म को, धिक् लाभ दुःख सहते हुए ॥19॥

मैंने न रोका रोग–दुःख, संभोग सुख देखा किया,
मन में न माना मृत्यु–भय, धन–लाभ ही लेखा किया ।
हा ! मैं अधम युवती जनों के, ध्यान नित करता रहा,
पर नरक–कारागार से, मन में न मैं डरता रहा ॥20॥

सद् वृत्ति से मन में न मैंने, साधुता हा साधिता,
उपकार करके कीर्ति भी, मैंने नहीं कुछ अर्जिता ।
तीर्थ के उद्धार आदिक, कार्य कर पाए नहीं ,
नर–जन्म् पारस तुल्य निज, मैंने गंवाया व्यर्थ ही ॥21॥

शास्त्रोक्त विधि वैराग्य भी, करना मुझे आता नहीं,
खल–वाक्य भी गत क्रोध हो, सहना मुझे आता नहीं ।
अध्यात्म–विद्या है न मुझमें, है न कोई सत्कला,
फिर देव ! कैसे यह भवोदधि, पार होवेगा भला ॥22॥

सत्कर्म पहले जन्म में, मैंने किया कोई नहीं,
आशा नही जन्मान्य में, उसको करुंगा में कहीं ।
इस भांति का यदि हूं जिनेश्वर ! क्यों न मुझको कष्ट हो ?,
संसार में फिर जन्म तीनों, क्यों न मेरे नष्ट हो ॥23॥

हे पूज्य ! अपने चरित्र को, बहु भांति गाऊँ क्या वृथा,
कुछ भी नहीं तुझसे छिपी है, पापमय मेरी कथा ।
क्योंकि त्रिजग के रूप हो तुम, ईश हो सर्वज्ञ हो,
पथ के प्रदर्शक हो तुम्हीं , मम चित्त के मर्मज्ञ हो ॥24॥

दीनोद्धारक धीर, आपसा अन्य नहीं है,
कृपा–पात्र भी नाथ ! न मुझसा अवर कहीं है ।
तो भी मांगू नहीं धान्य, धन कभी भूलकर,
अर्हन् ! केवल बोधिरत्न दे, होवे मंगल कर ॥
श्री रत्नाकर गुण–गान यह, दुरित दुःख सबके हरे ।
बस एक यही है प्रार्थना, मंगलमय जग को करे ॥25॥

卐

3. जय जय जय भगवान्

जय जय जय भगवान

अजर–अमर अखिलेश निरंजन, जयति सिद्ध भगवन् ॥ टेर॥

अगम अगोचर तू अविनाशी, निराकर निर्भय सुख राशि
निर्विकल्प निर्लेप निरामय, निष्कलंक निष्काम ॥ जय ॥1॥

कर्म न काया मोह न माया, भूख न तिरखा रंक न राया ।
एक स्वरूप, अरूप अगुरु लघु, निर्मल ज्योति महान् ॥ जय ॥2॥

हे अनन्त, हे अन्तर्यामी,अष्ट गुणों के धारक स्वामी ।
तुम बिन दूजा देव न पाया, त्रिभुवन में अभिराम ॥ जय ॥3॥

गुरु निर्ग्रन्थों ने समझाया, सच्चा प्रभु का रूप बताया ।
अब तुम में ही मिल जाऊं मैं, ऐसा दो वरदान ॥ जय ॥4॥

'सूर्य चन्द्र' है शरण तिहारी, प्रभु करना मेरी रखवारी ।
तुझ में मुझ में भेद न पाऊं, ऐसा हो संधान ॥ जय ॥5॥

卐

1. प्रत्याख्यान सूत्र

1. नवकारसी- सूत्र

उग्गए सूरे नमोक्कारसहियं पच्चक्खामि चउव्विहं-पि आहारं- असणं, पाणं, खाइमं, साइमं । 1.अण्णत्थऽणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, वोसिरामि ।

2. पोरिसी-सूत्र

उग्गए सूरे पोरिसिं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं- असणं, पाणं, खाइमं, साइमं । 1.अण्णत्थऽणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. पच्छन्नकालेणं, 4. दिसामोहेणं, 5. साहुवयणेणं, 6. सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं, वोसिरामि ।

3. पूर्वार्ध (पुरिमड्ढ)- सूत्र

उग्गए सूरे पुरिमड्ढं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं- असणं, पाणं, खाइमं, साइमं । 1.अण्णत्थऽणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. पच्छन्नकालेणं, 4. दिसामोहेणं, 5. साहुवयणेणं, 6. महत्तरागारेणं, 7. सव्वसमाहि-वत्तिया-गारेणं, वोसिरामि ।

4. एकासन - सूत्र

एगासणं पच्चक्खामि तिविहं पि आहारं- असणं, खाइमं, साइमं । 1.अण्णत्थऽणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. सागारियागारेणं, 4.आउट्टणपसारणेणं, 5. गुरू-अब्भुट्ठाणेणं, 6. पारिट्ठावणियागारेणं, 7. महत्तरागारेणं, 8. सव्वसमाहि-वत्तिया-गारेणं, वोसिरामि ।

5. एकस्थान (एकलठाणा)-सूत्र

एक्कासणं एगट्ठाणं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं- असणं, पाणं, खाइमं, साइमं । 1.अण्णत्थऽणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. सागारियागारेणं, 4. गुरू-अब्भुट्ठाणेणं, 5. पारिट्ठावणियागारेणं, 6. महत्तरागारेणं, 7. सव्वसमाहि-वत्तिया-गारेणं, वोसिरामि ।

6. आचाम्ल (आयंबिल)-सूत्र

आयंबिल पच्चक्खामि, तिविहंपि आहारं- असणं, खाइमं, साइमं ।

1.अण्णत्थऽणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. लेवालेवेणं, 4. उक्खित्तविवेगेणं 5. गिहत्थसंसट्ठेणं, 6. परिट्ठावणियागारेणं, 7. महत्तरागारेणं, 8. सव्वसमाहि-वत्तिया-गारेणं, वोसिरामि।

7. (अ) चौविहार उपवास

उग्गए सूरे चउत्थभत्तं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं - असणं, पाणं, खाइमं साइमं। 1.अण्णत्थऽणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. परिट्ठावणियागारेणं, 4. महत्तरागारेणं 5. सव्वसमाहि-वत्तिया-गारेणं, वोसिरामि।

7. (ब) तिविहार उपवास

उग्गए सूरे चउत्थभत्तं पच्चक्खामि, तिविहं पि आहारं - असणं, खाइमं, साइमं। 1. अण्णत्थऽणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. परिट्ठावणियागारेणं, 4. महत्तरागारेणं 5. सव्वसमाहि-वत्तिया-गारेणं, वोसिरामि।

8. दिवसचरिम - सूत्र

दिवसचरिमं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं - असणं, पाणं, खाइमं, साइमं 1. अण्णत्थऽणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. महत्तरागारेणं, 4. सव्वसमाहि-वत्तिया-गारेणं, वोसिरामि।

9. अभिग्रह- सूत्र

अभिग्गहं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं - असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। 1. अण्णत्थऽणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. महत्तरागारेणं, 4. सव्वसमाहि-वत्तिया-गारेणं, वोसिरामि।

10. निर्विकृतिक (नीवी)- सूत्र

विगइओ पच्चक्खामि, 1. अण्णत्थऽणाभोगेणं, 2. सहसागारेणं, 3. लेवालेवेणं 4.गिहत्थसंसट्ठेणं, 5. उक्खित्तविवेगेणं, 6. पडुच्चमक्खिएणं, 7.परिट्ठावणियागारेणं, 8. महत्तरागारेणं, 9. सव्वसमाहि-वत्तिया-गारेणं, वोसिरामि।

(उपवास, दिवसचरिम अभिग्रह आदि में यदि पानी का आगार रखना हो तो 'चउव्विहं' के स्थान पर 'तिविहं' पाठ बोलना चाहिए और आगे 'पाणं' शब्द नहीं बोलना चाहिए।)

2. प्रत्याख्यानों में रखे जाने वाले आगारों के अर्थ-

1.(अण्णत्थऽणाभोगेणं) - प्रत्याख्यान की स्मृति न रहने से कुछ खा पी लेना।

2. सहसागारेणं - अचानक कोई वस्तु मुंह में गिर जाना जैसे वर्षा की बूंद आदि।

3. पच्छन्नकालेणं - पौरसी आदि का समय ज्ञात न होने से अथवा बादलों, आंधी, कुहरा आदि के कारण सूर्य नहीं दिखाई दे। जिससे पौरसी पूर्ण होने के भ्रम से पार लेना।

4. दिसामोहेणं - दिशा संबंधी भ्रम हो जाना अर्थात् पूर्व को पश्चिम समझ कर पौरसी न आने पर सूर्य के ऊंचा चढ़ जाने की भ्रांति से आहारादि ग्रहण कर लेना।

5. साहुवयणेणं - साधु के द्वारा 'पौरसी आ गई है' ऐसा कहने पर पौरसी आदि पार लेना।

6. महत्तरागारेणं - वैय्यावृत्य आदि खास कारण से गुरु आदि की आज्ञा होने पर निश्चय किए हुए समय से पहले प्रत्याख्यान पार लेना।

7. सव्वसमाहि वत्तियागारेणं -अकस्मात् असाध्य रोगों के कारण निर्धारित समय के पहले ही औषधी लेना।

8. सागारियागारेणं - यह आगार मुख्यतः साधु - साध्वियों के लिए होता है आहार ग्रहण के स्थान पर गृहस्थों के आने पर एकासन आदि में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना।

9. आउट्टणपसारेणं - एकासन में भोजन करते समय हाथ पाव सुन्न पड़ जाने आदि कारण से सिकोड़ना फैलाना पड़े।

10. गुरू अब्भुट्ठाणेणं - गुरुजनों के आने पर आहार आदि देने हेतु उठना पड़े।

11. परिट्ठावणिया गारेणं - यह आगार साधु-साध्वियों के लिए है। परठने की स्थिति होने पर एकासना आदि करने के बाद भी आहार ग्रहण करना पड़े।

12. लेवालेवेणं - घी आदि से लिप्त हो या बाद में उसे पोंछ लिया हो, फिर भी उसमें कुछ अंश रहता है, उस वर्तन आदि से दिया हुआ आहारादि ग्रहण करना पड़े।

13. उक्खित विवेगेणं - रोटी आदि पर रखे हुए सूखे गुड़ या शक्कर को अलग करके दिया जाए, उसे लेना पड़े।

14. गिहिसंसट्ठेणं - गृहस्थ के द्वारा घृतादि का लेप, घृतादि चुपड़ी रोटी, सूखी रोटी पर लेप, सिझाए हुए चावल, रोटी में पहले से नमक डाल दिया हो, छौंक में कुछ तेल घी डाल दिया हो यह अंश अत्यल्प अल्प हो, उसे लेना पड़े।

15. पडुच्चमक्खिएणं - भोजन बनाते समय यदि घी तेल आदि का अंगुली से लेप लग गया है उसे लेना पड़े।

3. प्रत्याख्यान पारणासूत्र (पालने का पाठ)

(लिए गये पच्चक्खाण का नाम) सम्मं काएणं, न फासियं, न पालियं, न तीरियं, न किट्टियं, न सोहियं, न आराहियं, आणाए, अणु पालियं, न भवइ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

(नोट : जो प्रत्याख्यान पालना हो 'पच्चक्खाण का नाम' के स्थान पर उस पाठ का नाम कह कर शेष पाठ कहना चाहिए।)

अर्थ :- .... जो प्रत्याख्यान किया था उस प्रत्याख्यान का सम्यक् प्रकार से काया द्वारा स्पर्शनादि करना चाहिए फिर भी वह प्रत्याख्यान यदि मन-वचन-काया के द्वारा सम्यक् रूप से स्पर्श नहीं किया हो, पालन नहीं किया हो, पूर्ण नहीं किया हो, कीर्तन (स्मरण) नहीं किया हो, शुद्धि (शोधन) नहीं किया हो, आराधना नहीं की हो, तथा आज्ञा के अनुसार पालन नहीं हुआ (किया) हो, अर्थात् जो मेरे द्वारा उपरोक्त रूप से आराधना नहीं हुई हो तो उस दुष्कृत को मैं मिथ्या करता हूँ अर्थात वह मेरा दुष्कृत कार्य असफल हो।

व्याख्या- प्रत्याख्यान पालन के छः अंग बतलाए गए है अतएव मूलपाठ के अनुसार कृत प्रत्याख्यान की आराधना करने से प्रत्याख्यान की पूर्णता होती है, अतः शास्त्रोक्त विधि अनुसार आराधना करनी चाहिए।

1. फासियं (स्पृष्ट या स्पर्शित)- उचित समय पर विधि पूर्वक गुरुदेव या स्वयं गृहित जो प्रत्याख्यान है, उसे स्पर्शित कहते हैं।

2.पालियं (पालित) - गृहित प्रत्याख्यान को बार-बार उपयोग में लाकर सावधानी के साथ उसकी सतत् रक्षा करने एवं उनके आराधना में सम्यक् उपयोग को पालित कहतें है।

3. तीरियं (तीरित)- गृहीत प्रत्याख्यान का काल पूरा हो जाने पर भी कुछ समय ठहर कर भोजन करने को तीरित कहते हैं।

4. किट्टियं (कीर्तित)- भोजन प्रारम्भ करने से पहले लिए हुए प्रत्याख्यान को विचार कर उत्कीर्तन-पूर्वक कहना कि मैने अमुक प्रत्याख्यान अमुक रुप से ग्रहण किया था और वह भली भांति पूरा हो गया है। ऐसे याद करके आहारादि करने को कीर्तित कहते है।

5. सोहियं (शोधित)- कोई दूषण लग जाये तो सहसा उसकी शुद्धि करना, अथवा "सोहियं" का संस्कृत रूप "शोभित" भी होता है। इस दशा में अर्थ होगा - गुरुजनों को, साथियों को अथवा अतिथिजनों को भोजन देकर शेष बचे हुए का स्वयं भोजन करने को शोधित कहते हैं।

6. आराहियं (आराधित)- सब दोषों से सर्वथा दूर रहते हुए ऊपर कही हुई विधि के अनुसार सम्यक् प्रकार से प्रत्याख्यान निष्पन्न करने को आराधित कहते हैं।

साधारण मनुष्य सर्वथा भ्रांति रहित नहीं हो सकता। वह साधना करता हुआ भी कभी कभी साधना के पथ से इधर उधर भटक जाता है। प्रस्तुत सूत्र के द्वारा स्वीकृत व्रत की शुद्धि की जाती है। भ्रान्ति जनित दोषों की आलोचना की जाती है, और अन्त में मिच्छामि दुक्कडं देकर प्रत्याख्यान में लगे अतिचारों का प्रतिक्रमण किया जाता है। आलोचना एवं प्रतिक्रमण करने से व्रत शुद्ध हो जाता है।

4. प्रत्याख्यान संबंधी कुछ ज्ञातव्य बिन्दु :-

नवकारसी, पोरसी, दो पोरसी - इन पच्चक्खाणों में चारों आहार का त्याग होता है। इनमें तथा एकासन आयंबिल उपवास आदि में भी पहले वाले दिन सूर्यास्त के वाद से ही आहार पानी का त्याग कर देना श्रेष्ठ है अन्यथा अर्धरात्रि के बाद तो कुछ भी खाना पीना नहीं होना चाहिए। रात्रि 12 बजे के बाद कुछ भी खा पी लेने पर नवकारसी,

एकासन, उपवास आदि के प्रत्याख्यान नहीं हो सकते हैं।

एकासन - दिन में एक वार पुट्ठों को उठाये विना भोजन करना। इसमें हाथ पैर का आकुंचन प्रसारण किया जा सकता है। किन्तु पुट्ठे अपने स्थान पर टिके रहें। गुरु के आगमन पर खड़े हो सकते हैं। एकासन में अचित आहार पानी ही लिया जाता है। यदि चौविहार करना हो तो चउव्विहं कहकर 'असणं' के बाद 'पाणं' भी कहना चाहिए।

एकलठाना - इसमें दिन में एक ही वार आहार पानी साथ में लेना होता है। इसमें पैर फैलाना, सिकोड़ना आदि का कार्य नहीं किया जा सकता है। गुरु के आगमन में खड़े हो सकते हैं।

आयंबिल- दिन में एक वार चावल, गेहूं, बाजरे, ज्वार, मक्का, आदि की रोटी,दलिया आदि को नमक- मसाला रहित ग्रहण किया जा सकता है। दूध, दही आदि विगय फल, लीलोती, सूखे मेवे, मुखवास व किसी भी प्रकार का नमक इसमें ग्रहण नहीं किये जा सकते हैं। गुरु के आगमन पर खड़े नहीं हो सकते है।

नीवी- इसमें भी आयंबिल के समान ही आहार ग्रहण किया जाता है। अन्तर यह है कि नीवी में छाछ भी ग्रहण की जा सकती है एवं भोजन वनाते समय घी, तेल आदि का अंगुली से लेप लग गया है। उसे विवेकपूर्वक लिया जा सकता हैं।

उपवास - इसमें चउत्थ , दो उपवास में छट्ठभत्तं, तीन उपवास में अट्ठभत्तं का पचक्खाण करना चाहिए। चतुर्थ भक्त का शव्दार्थ है- ऐसा तप जिसमें चौथा भक्त ग्रहण किया जा सकता है। भक्त का तात्पर्य है - भोजन। आगमकारों ने एक अहोरात्री में दो भक्त का निरूपण किया है -1. दिवस भक्त, 2. रात्रि भक्त। जिस दिन उपवास करे उसके पहले की रात्रि का एक भक्त (अर्द्धरात्री का समय परम्परा अनुसासर है।) उपवास वाले दिन का एक भक्त तथा रात्रि का एक भक्त। इस प्रकार तीन भक्तों का त्याग होता है, तथा अगले दिन सूर्योदय के पश्चात् चतुर्थ भक्त को ग्रहण किया जा सकता है। इसी प्रकार षष्ठ भक्त (वेला), अष्ठम भक्त (तेला), दशम भक्त (चौला) आदि के विषय में भी यही समझना चाहिए।

2. तेले से ऊपर की तपस्या तिविहार हो तो गरम पानी का ही उपयोग करना चाहिए।

3. तिविहार उपवास, एकासना, आयंबिल, नीवी की रात्रि चौविहार ही होती है। अर्थात् दिन में ही फासुक जल का आगार होता है।



पौषध स्वरूप, विधि एवं सावधानियां

1. सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र रूपी रत्नत्रय का पोषक,

2. आत्मा के स्वाभाविक गुणों का पोषक तथा

3. छः काया के जीवों का रक्षक होने से अहिंसा आदि व्रतों का पोषक होने वाला व्रत पौषध कहलाता है। पौषध आत्मचिंतन एवं आत्मविकास की सर्वोत्तम साधना है।

वर्तमान में धारणा परम्परानुसार पौषध* तीन प्रकार का माना जाता है -

(1) ग्यारहवां प्रतिपूर्ण पौषध- इसमें चतुर्विध आहार त्याग रूप उपवास तथा कम से कम 8 प्रहर का अर्थात् उपवास के दिन जितने बजे प्रत्याख्यान ग्रहण किया अगले दिन सूर्योदय के पश्चात् उतने बजे तक दो करण तीन योग से सावद्य योगों का त्याग किया जाता है।

(2) ग्यारहवां पौषध- इसमें चतुर्विध आहार त्याग रूप उपवास तथा कम से कम 5 प्रहर (चार प्रहर रात्रि का तथा एक प्रहर दिन का) का दो करण तीन योग से सावद्य योगों का त्याग किया जाता है।

(3) दसवां पौषध - इसमें त्रिविधाहार का त्याग रूप उपवास कम से कम 4 प्रहर से कुछ अधिक (चार प्रहर रात्रि के एवं कुछ समय का) समय तक दो करण तीन योग से सावद्य योगों का त्याग किया जाता है।

इन तीन प्रकार के पौषधों के अतिरिक्त दया एवं दयाभाव की आराधना भी की जाती है। दया में लगभग सात प्रहर का दो करण तीन योग अथवा एक करण एक योग से संवर तथा ग्यारह सामायिक करना आवश्यक होता है। दया में उपवास करना अनिवार्य नहीं है। दयाभाव में नौ सामायिक तथा सूर्यास्त के पश्चात् प्रतिक्रमण पर्यन्त संवर की आराधना करनी होती है।

निर्दोष रूप से पौषध करने के लिए पौषध के पूर्व दिन निम्नलिखित 6 बोलों की शुद्धता रखनी चाहिए अर्थात् पौषध के पहले ही मैं इन कार्यों को कर लूं ऐसा विचार कर निम्नांकित 6 कार्य पौषध के प हले वाले दिन करना दोष रूप है। अतः ऐसा नहीं करना चाहिए।

1. क्षौद कर्म (हजामत, स्नान आदि) नहीं करना। 2. मैथुन सेवन नहीं करना।

टिप्पणी- आगमों में श्रावकों के लिए स्पष्टतः दो प्रकार के पौषध माने हैं- ग्यारहवां प्रतिपूर्ण पौषध तथा खाते पीते पौषध। ग्यारहवें प्रतिपूर्ण पौषध का स्वरूप ऊपर बतलाया गया है खाते पीते पौषध को वर्तमान में 'दया' के नाम से पुकारा जाता है।

3. सरस आहार नहीं करना। 4. वस्त्र नहीं धोना।

5. जेवर नहीं पहनना। 6. वस्त्र नहीं रंगना।

पौषध ग्रहण करने के बाद निम्नांकित 12 बातों की शुद्धता रखनी चाहिए :

1. पौषध में अव्रती को सत्कार नहीं देना, आसन नहीं देना, वैय्यावृत्य नहीं करना।
2. शरीर का श्रृंगार जैसे वाल संवारना, दाढ़ी मूंछ संवारना, धोती की पटली जमाना आदि नहीं करना।
3. स्वयं या दूसरे के शरीर का मैल नहीं उतारना।
4. दिन में नींद नहीं लेना तथा रात्रि में दो प्रहर से अधिक नींद नहीं लेना।
5. पूंजनी से पूंजे विना खाज नहीं खुजलाना।
6. विकथाएं नहीं करना।
7. चुगली, निंदा, हंसी-मजाक आदि नहीं करना या गप्पे नहीं मारना।
8. व्यापार संवंधी, हिसाव संवंधी वातें नहीं करना या गप्पे नहीं मारना।
9. अपने शरीर को या स्त्री के शरीर को राग दृष्टि से नहीं देखना।
10. गौत्र, जाति, नाते आदि नहीं मिलाना, जैसे आप हमारे अमुक रिश्तेदार हैं आदि कहना।
11. खुले मुंह वोलने वाले तथा जिसके पास सचित्त वस्तु हो, उससे वार्तालाप नहीं करना।
12. रुदन नहीं करना, शोक संताप नहीं करना।

इन अट्ठारह वोलों का पालन करने वाला साधक पौषध व्रत का शुद्ध आचरण करता है अन्यथा ये दोष लगते हैं। इन दोषों से अवश्य ही वचना चाहिए।

पौषध व्रत के अतिचार :- नीचे लिखे पांच अतिचारों को टालना चाहिए-

1. **अप्रत्युवेक्षित- दुष्प्रत्युवेक्षित शय्या-संस्तारक** : - विछौने, ओढ़ने तथा आसनादि की प्रतिलेखना नहीं करना अथवा अच्छी तरह से नहीं करना।
2. **अप्रमार्जित दुष्प्रमार्जित शय्या-संस्तारक** :- विछौने आदि तथा भूमि आदि की प्रमार्जना नहीं करना अथवा अच्छी तरह न करना।
3. **अप्रत्युवेक्षित, दुष्प्रत्युवेक्षित उच्चार-प्रश्रवण भूमि** :- मल -मूत्रादि परठने के पूर्व उस स्थान की प्रतिलेखना नहीं करना अथवा अच्छी तरह से न करना।
4. **अप्रमार्जित-प्रमार्जित उच्चार-प्रश्रवण भूमि** :- मल मूत्रादि परठने के पूर्व उस स्थान को नहीं पूंजना अथवा अच्छी तरह से न पूंजना।

5. **पौषधोपवास का सम्यक् अपालन** : - पौषध का विधिपूर्वक पालन नहीं करना। (निद्रावस्था में, चलने में, बोलने इत्यादि में लगने वाले दोष भी इसके अन्तर्गत समाहित हो जाते हैं।)

उक्त अतिचारों से बचते हुए पौषध व्रत की आराधना करना चाहिए जिससे आत्मगुणों का पोषण और आत्मशक्ति का विकास होता है। जो श्रावक भावपूर्वक शुद्ध पौषध का पालन करता है वह 1. कषाय की गर्मी को शांत करता है 2. अशुभभावों को क्षय करके शुभभावों में वृद्धि करता है 3. अशुभ कर्मों को क्षय कर शुभ कर्मों का बन्ध करता है।

पौषधव्रत ग्रहण करने की विधि- सर्वप्रथम जहां पौषध व्रत करना हो वहां की भूमि का प्रतिलेखन करना, मल-मूत्र विसर्जन की भूमि का प्रतिलेखन करना, पहनने-ओढ़ने योग्य मुख वस्त्रिका, चद्दर, चोलपट्टा, आसन आदि की प्रतिलेखना करें। तत्पश्चात् तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से वन्दना करें। फिर नमस्कार मंत्र, इच्छाकारेणं, तस्सउत्तरी का पाठ बोलकर कायोत्सर्ग में एक लोगस्स का ध्यान करें। फिर 'नमोअरिहंताणं' बोलकर ध्यान पाले फिर ध्यान विशुद्धि की पाटी कहकर एक लोगस्स प्रकट कह कर गुरु, भगवंतों से अथवा गुरु भगवंतों के न विराजने पर बड़े श्रावकों से अथवा स्वयं पौषध के प्रत्याख्यान की पाटी से पौषध का प्रत्याख्यान ग्रहण करें (देखें आगे पृष्ठ पर)। तदनंतर दो वार नमोत्थुणं का पाठ करें।

पौषध पालने की विधि

नमस्कार महामंत्र, इच्छाकारेणं तस्सउत्तरी का पाठ बोलकर दो लोगस्स का ध्यान करें। 'णमोअरिहंताणं'' कहकर ध्यान पालें फिर नमस्कार महामंत्र ध्यान विशुद्धि का पाठ 1 लोगस्स प्रगट एवं दो वार नमोत्थुणं कहकर-

ग्यारहवां व्रत, पडिपुण्ण पौषध के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते अलोउं - अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सेज्जासंथारए, अप्पमज्जिय, दुप्पमज्जिय सेज्जासंथारए अप्पडिलेहिय, दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवणभूमि अप्पमज्जिय, दुप्पमज्जिय उच्चार पासवणभूमि, पोसहस्स सम्मंअणणुपालणया। जो मे देवसियो अइयारो कओ तस्समिच्छामि दुक्कडं।

पोसहं सम्मं काएणं न फासियं, न पालियं, न तीरियं, न किट्टियं, न सोहियं, न आराहियं, अणाए अणुपालियं न भवइ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

पौषध के 18 दोषों में से कोई दोष का सेवन किया हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

पौषध में स्त्री कथा (पुरुष कथा), भक्त कथा, देश कथा, राजकथा, २

कथाओं में से कोई कथा की हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं। पौपध में आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रह संज्ञा का सेवन किया हो तो तस्समिच्छामि दुक्कडं। पौषध में अतिक्रम, व्यतिक्रम अतिचार अनाचार जानते अजानते मन, वचन, काया से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

पौपध विधि से लिया, विधि से पूर्ण किया, विधि में कोई अविधि हुई हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

पाठ के उच्चारण में काना, मात्रा, अनुस्वार,पद, अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ, न्यूनाधिक विपरीत पढ़ने में आया हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं। इसके बाद 5 नवकारमंत्र का ध्यान करें।

पौषध, दया में रखने योग्य आवश्यक सावधानियां

1. पौपध आदि व्रत की आराधना करने वाले श्रावक खुले मुंह नहीं बोले तथा सोते समय सागारी संथारा ग्रहण कर मुंहपत्ती बांधकर शयन करें।

2. ब्रह्म मुहुर्त में उठकर धर्म जागरण प्रतिक्रमण आदि धार्मिक क्रियाएं करनी चाहिए।

3. भाई - बहनों का तथा बहन -भाईयों का स्पर्श नहीं करें।

4. कच्चा पानी, लाइट, माइक, पंखा, सेल की घड़ी आदि विद्युत उपकरणों का स्पर्श एवं उपयोग नहीं करें तथा लीलनफुलन हरी घास को स्पर्श न करें एवं उस पर नहीं चलें।

5. पौपध संबंधित उपकरण और शय्या संबंधी सामग्री वस्त्र आदि का प्रतिलेखन अवश्य करना चाहिए।

6. अकारण दिन में शयन, शारीरिक अंगों का फैलाना- सिकोड़ना, दीवार आदि का आलंबन नहीं लेना चाहिए।

7. सोने, चलने, बैठने आदि की क्रिया एवं उपकरण आदि रखने की क्रिया यतनापूर्वक करें रात्रि में आवश्यक प्रयोजन होने पर पूंज करके चलें।

8. मलमूत्र आदि परठने जाते समय 3 बार आवस्सिया कहें परठने योग्य भूमि को देखें, पूंजे और शकेन्द्र महाराज की आज्ञा लेकर लगभग 4 अंगुल ऊंचे से यतनापूर्वक परठें परठकर 3 बार वोसिरामि कहें। आते समय 3 बार निस्सीहि करें। स्थान पर आकर 'इरियावहिया' का कायोत्सर्ग करें।

प्रत्येक प्रवृत्ति यतनापूर्वक करते हुए व्रत की आराधना करें।



11 वां पौषध का पच्चक्खाण का पाठ

ग्यारहवां पडिपुण्ण पौषध असणं- पाणं खाइमं साइमं का पच्चक्खाण, अबंभ सेवन का पच्चक्खाण, अमुकमणि सुवर्ण का पच्चक्खाण, मालावण्णग विलेवण का पच्चक्खाण, सत्थमुसलादि सावज्जजोग सेवन का पच्चक्खाण जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा तस्सभंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

(**नोट** : यदि चौविहार उपवास युक्त पौषध 8 प्रहर या उससे अधिक का ग्रहण करना हो तो उक्त पाठ से पच्चक्खाण ग्रहण करें। किन्तु 8 प्रहर से कम समय का पौषध लेना होतो पडिपुण्ण शब्द नहीं बोले अर्थात् ग्यारहवां पौषध असणं, पाणं..... आदि पाठ बोले।)

10 वां पौषध का पच्चक्खाण का पाठ

दसमं पोसहोववासं पच्चक्खामि चउव्विहंपि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं दव्वओ सावज्जं जोगं पच्चक्खामि खेत्तओ लोगप्पमाणं कालओ सुरोग्गयं भावओ दुविहं तिविहेंण ण करेमि ण कारवेमि मणसा वयसा कायसा तस्स भंते पडिक्मामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

दया का पच्चक्खाण का पाठ

द्रव्य सेपांच आस्रव (सावद्य योग) सेवन का पच्चक्खाण, क्षेत्र से सम्पूर्ण लोक प्रमाण, काल से सूर्योदय प्रमाण (सामायिक प्रमाण) भाव से उपयोग सहित एक करण एक योग (या इच्छानुसार) तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

संवर का पच्चक्खाण का पाठ

द्रव्य सेपांच आस्रव (सावद्य योग) सेवन का पच्चक्खाण, क्षेत्र से सम्पूर्ण लोक प्रमाण, काल से स्थिरता प्रमाण (या जितने समय का करना हो उसे प्रकट करना चाहिए), भाव से उपयोग सहित दो करण, तीन योग से तस्स भंते पडिक्मामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

संवर, दया, 10 वां पौषध आदि अनेक व्रतों को पारने का पाठ-

पच्चक्खाणं सम्मं, काएणं, ण फासियं, ण पालियं, ण तीरियं, ण किट्टियं, ण सोहियं, ण आराहियं, आणाए अणु पालियं ण भवइ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

नोट- जो भी प्रत्याख्यान ग्रहण किया है उसका नाम बोलकर आगे का पाठ बोलना चाहिए।



3. आलोयणा के सुभाषित

(1) शुद्ध चेतन उज्वल द्रव्य, रहयो कर्म मल छाय।
तप संयम से धोवतां, ज्ञान ज्योति बढ़ जाये

(2) ज्ञान थकी जाने सकल, दर्शन श्रद्धा रूप।
चारित्र से आवत रुके, तपस्या क्षपण स्वरूप

(3) कर्म रूप मल के शुधे, चेतन चाँदी रूप।
निर्मल ज्योति प्रकट भयां, केवल ज्ञान अनूप

(4) मूसी पावक सोहगी, फूंका तणो उपाय।
राम चरण चारूं मिल्यां, मैल कनक को जाय

(5) कर्म रूप बादल मिटे, प्रगटे चेतन चंद।
ज्ञान रूप गुण चांदनी, निर्मल ज्योति अमन्द

(6) रागद्वेष दो बीज से, कर्म बंध की व्याध।
ज्ञानातम वैराग्य से, पावे मुक्ति समाध

(7) अवसर बीत्यो जात है, अपने वश कछु होत।
पुण्य छतां पुण्य होत है, दीपक दीपक ज्योत

(8) कल्पवृक्ष चिन्तामणि, इस भव में सुखकार
ज्ञान वृद्धि इनसे अधिक, भव दुःख भंजनहार

(9) राई मात्र घट वध नहीं, देख्या केवल ज्ञान।
यह निश्चय कर जानके, तजिये प्रथम ध्यान

(10) दूजा कभी न चिंतिये, कर्मबंध बहु दोष।
तीजा चौथा ध्याय के, करिये मन संतोष

(11) गई वस्तु सोचे नहीं, आगम वांछा नांय।
वर्तमान वर्ते सदा, सो ज्ञानी जग मांय

(12) अहो समदृष्टि जीवड़ा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अन्तर्गत न्यारो रहे, ज्यों धाय खिलावे बाल

(13) सुख दुःख दोनूं बसत हैं, ज्ञानी के घट मांय।
गिरी सर दीसे मुकुर में, भार भींजवो नांय

卐

श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, बीकानेर

जैन संस्कार पाठ्यक्रम भाग - पांच

(नमूनार्थ प्रश्न पत्र)

पूर्णांक : १००

समय : ३ सामायिक (सामायिक की : हाँ/ना, कितनी :............)

नोट : सामायिक नहीं करने वाले परीक्षार्थी के ३ अंक कम किए जाएंगे।

१. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए - १०

(अ) .... कर्म २२ प्रकार से वंधता है व १६ प्रकार से भोगा जाता है।

(ब) स्थितिबंध व अनुभाग वंध......................... के निमित्त से होता है।

(स) श्रावकजी अपने व्रतनियमों का ....रीति से पालन करें।

(द) संसार .... जाने तो ज्ञान वढ़े।

(य) हल्दी के रंग के समान सहज ही छूट जाए, उसे ....लोभ कहते है।

२. काव्यपूर्ति करो - १५

(अ) भक्तामर....................................वितानम्।

(ब) आज.......................... जन-जन में।

(स) कर्म न.......................... ज्योति महान्।

(द) रत्नत्रयी...........................मैने किया।

(य) सर्वा दिशो...........................जालम्।

३. निम्नांकित कथन किसने किससे कहे, लिखो - १०

(अ) "नहीं, तुम पारणा करो, मेरे लिए मत रुको, भिक्षा ले आए हो तो इसका उपयोग करना ही पड़ेगा।"

(ब) "राजनीति छल से चलती है, किन्तु छल का परिणाम कभी - कभी वड़ा भयंकर आता है।"

(स) "मेरे जैसे अन्यायी पति के दोषों को भी तू भूल गई। वास्तव में तेरी पति भक्ति धन्य है।"

(द) " हे आर्य ! इस तरुणावस्था में भोग- विलास के समय आपने दीक्षा क्यों

(य) "राजन् ! पवनंजय गुणवान हैं, घराना भी ऊँचा है और लम्बी आयु लेकर आए हैं, अतः हमारी अंजना उनके साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करेगी।"

४. गाथा पूरी करो-

(अ) धम्मो मंगल..................................मणो ।

(ब) धूवणे त्ति...........................गायब्भंगविभूसणे ॥

(स) कहं चरे.......................................बंधइ ॥

(द) जया ....पडिवज्जइ ॥

५. संक्षिप्त उत्तर लिखो -

(अ) अनुभागबंध के तीन अन्य नाम बताओ।

(ब) दर्शनावरणीय कर्म किसे कहते हैं ?

(स) ज्ञान घटने का पाँचवाँ बोल लिखो ?

(द) नोकषाय के भेद कितने हैं ? नाम लिखो।

(य) मनुष्यायुबंध के चार प्रकार (कारण) लिखो।

(र) नवकारसी आदि प्रत्याखान पारने का पाठ कौन सा है।

(ल) पौषध ग्रहण के बाद के कोई ३ दोष लिखो।

(व) भक्तामर स्तोत्र की रचना किसने की ?

(श) पौषध व्रत के पाँच अतिचार लिखो।

(ह) आलोयणा के कोई एक सुभाषित लिखो।

६. भावार्थ लिखो -

(अ) पढमं णाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।
अण्णाणी किं काही, किं वा णाही सेय पावगं ॥

(ब) धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीवियकारणा।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ॥

(स) तवोगुणपहाणस्स, उज्जुमइ खंतिसंजमरयस्स।
परीसहे जिणंतस्स, सुलहा सुगइ तारिसगस्स।

***

श्री अखिल भारत वर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

मुख्य उद्देश्य

- समता समाज की रचना।
- व्यसन मुक्त राष्ट्र का निर्माण।
- जीवदया, स्वधर्मी सेवा, मानव सेवा की विभिन्न प्रवृत्तियों का संचालन।
- जैन संस्कृति, धर्म, दर्शन और आचार के शाश्वत सिद्धान्तों का लोक भाषा में प्रचार।
- जन कल्याणकारी सहज-सुबोध साहित्य का निर्माण।
- सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र की रक्षा एवं वृद्धि हेतु शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था।
- समाज में धार्मिक चेतना के अभ्युत्थान हेतु आध्यात्मिक, नैतिक, चारित्रिक, शैक्षणिक विकास के कार्य करना।
- धार्मिक परीक्षा शिविर व शिक्षा के माध्यम से स्वाध्यायी तैयार करना।
- जैन धर्म के विभिन्न पहलुओं को जानने हेतु प्रयासरत शोधार्थियों एवं विद्वानों को यथोचित सहयोग प्रदान करना।
- धार्मिक, आध्यात्मिक व नैतिक शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम निर्धारित कर सम्यक् ज्ञान का प्रचार करना।